इक्कीसवीं सदी की
दहलीज पर खड़ी
भारत की
किशोर-तरुण पीढ़ी को

अनुक्रम

भाग-३ (क्रांति का तृतीय दौर)

भाग-४ (१९४२ का उग्र आंदोलन)

भूमिका

क्रांतिकारी आंदोलन : पृष्ठभूमि और किशोर

भारत को आजादी अहिंसक लड़ाई से मिली या कि सशस्त्र क्रांति आंदोलनों के समय-समय पर लगाए गए धक्कों से, यह विवाद उठाना व्यर्थ है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अहिंसावादियों और क्रांतिकारियों का ध्येय एक था, मंजिल एक ही थी—स्वतंत्रता प्राप्ति, रास्ते भले ही अलग-अलग रहे हों। ४ अक्तूबर, १९८१ के 'धर्मयुग' में इतिहासप्रसिद्ध चौरी-चौरा कांड के डिक्टेटर श्री द्वारिकाप्रसाद पांडेय ने जोर देकर अपना एक वक्तव्य छपवाया था कि 'स्वतंत्रता हमें अहिंसा से नहीं, क्रांति आंदोलनों से मिली है।' उसी वर्ष एक पत्रिका के दीपावली विशेषांक को क्रांतिकारियों के नाम समर्पित करते हुए आजादी का अधिकांश श्रेय क्रांतिकारियों को ही दिया गया था। 'काकोरी कांड' से जुड़े क्रांतिकारी साहित्यकार श्री मन्मथनाथ गुप्त ने तो अपनी पुस्तक 'भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास' में जगह-जगह जोर देकर इस मत की पुष्टि की है। बहरहाल, इस मत के पक्ष-विपक्ष में कोई विवाद उठाने के बजाय, यहाँ केवल यह इतिहास-सत्य प्रस्तुत कर देना पर्याप्त होगा।

चौरी-चौरा में हिंसा भड़क उठने पर जब गांधीजी ने अपना सत्याग्रह आंदोलन स्थगित कर दिया था तो इससे न केवल गरम दलवालों और क्रांतिकारियों में हताशा फैली थी, वरन् कांग्रेस के कुछ बड़े नेताओं ने भी उनके इस कदम को गलत बताया था। फिर १९४२ में स्वयं गांधीजी को जनता को 'करो या मरो' का प्रबल प्रेरणात्मक नारा देना पड़ा था और नेताओं के जेल जाने पर जनता ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' का नेतृत्व स्वयं अपने हाथों में ले लिया था। यही नहीं, छात्रों, महिलाओं, किसानों, मजदूरों सहित आम जनता की व्यापक भागीदारीवाले इस आंदोलन में लोगों ने गांधीजी के 'मरो' आह्वान के साथ अपने ढंग से 'मारो' भी जोड़ लिया था और अंग्रेजों को मारने के साथ उनका शासन उखाड़ फेंकने के लिए

तोड़ फोड़ की कार्यवाहियों द्वारा आंदोलन को वह उग्र रूप प्रदान कर दिया था जो क्रांति का ही एक अलग निराला रूप था।

तो एनी बसेंट की 'होम रूल लीग' हो या लोकमान्य तिलक का 'गरम दल', क्रांतिकारी आंदोलन के सामयिक धक्के हों या सन् '४२ का उग्र आंदोलन 'आजाद हिंद फौज' की कार्यवाही हो या १९४६ का 'नौसेना विद्रोह', स्वतंत्रता को समीप लाने में इन गरमजोश गतिविधियों का हाथ कम नहीं रहा। लड़ाई को भारत की आजादी के एक मुकाम तक पहुँचाने में इन सभी उपायों व रास्तों का अपना महत्त्व है।

सरफरोशी की तमन्ना

विद्रोह, गदर, क्रांति—इन शब्दों के अर्थ कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं रहे। जुल्म के खिलाफ समय-समय पर फूटे जन-असंतोष को यदि शासकों, शोषकों ने अलग-अलग नाम दिए तो इसका कारण स्पष्ट है—दोनों की मंशा अलग होती है, उद्देश्य अलग। जिस विद्रोह को विप्लव, गदर, राजद्रोह कहकर जुल्मी शासकों ने कुचला, जुल्म के शिकार विद्रोहियों ने उसे ही स्वाधीनता संग्राम कहा। क्रांति का अर्थ देकर उसके लिए अपनी जान की बाजियाँ तक लगा दीं -

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है।'

ये पंक्तियाँ अमर शहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' की भावना को ही व्यक्त नहीं करतीं, पूरे क्रांतिकारी आंदोलन का प्रतिनिधित्व भी करती हैं।

आतंकवाद और क्रांति में स्पष्ट भेद

आज के वातावरण को देखते हुए नई पीढ़ी के सामने 'आतंकवाद' और 'क्रांति' के भेद को स्पष्ट करना बेहद जरूरी है। आजाद भारत में जन्मी किशोर युवा पीढ़ी को देश की आजादी के लिए अपना सबकुछ, जान तक कुरबान कर देने वाले स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में बताने और हर समय जान हथेली पर लिये घूमने वाले क्रांतिकारियों की जोखिम भरी दास्तानें सुनाने का उद्देश्य यदि उनके सपनों को देश-निर्माण से जोड़ना, उनकी ऊर्जा को देश के लिए हर कुरबानी को उमंग में रंग, राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य की ओर उन्मुख करना है तो इसके लिए उनमें राष्ट्र चेतना जगाने के साथ, उन्हें क्रांति व आतंकवाद में भेद करना भी सिखाना होगा।

क्रांति का अर्थ और उद्देश्य केवल जुल्म के खिलाफ लड़ना मात्र नहीं

होता, उसके बाद तत्कालीन शासन व समाज में अपेक्षित परिवर्तन व सुधार लाना भी होता है, जिसकी बहुत स्पष्ट रूपरेखा क्रांति नेतृत्व के पास होती है। भगतसिंह 'बिस्मिल', सूर्यसेन आदि अग्रणी क्रांतिकारियों ने समय-समय पर अपने विचारों को लिपिबद्ध करके इस रूपरेखा को वाणी दी है। इसी तरह अहिंसक लड़ाई लड़नेवाले विचारक नेताओं ने भी। यहाँ इसके विस्तार में जाने की गुंजाइश नहीं। एक स्पष्ट उद्देश्य को सामने रखकर देशहित में लड़ी गई लड़ाई फिर हिंसक हो या अहिंसक, सफल रही हो या असफल, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। समय पर असफल लड़ाई भी आगे जारी रहती है और एक के बाद एक सरफरोश सामने आकर कभी-न-कभी उसे प्राय: सफल बनाकर ही छोड़ते हैं। अहिंसक सत्याग्रही और सशस्त्र विद्रोह द्वारा तख्ता पलट के समर्थक दोनों पक्ष उसकी कुछ भी व्याख्या करें, क्रांति का यह अर्थ उनके सामने स्पष्ट रहता ही है। भारत के बारे में यह बात इसलिए अधिक लागू होती है कि यहाँ स्वाधीनता संग्राम दोनों तरीकों से लड़ा गया; पर मंजिल एक ही थी।

आतंकवादी क्रांतिकारियों से इस मायने में अलग हैं कि उनका उद्देश्य स्वदेशहित और देश की स्वाधीनता से जुड़ा नहीं होता। सत्ता, पद, धन, प्रतिशोध जैसे किसी भी उद्देश्य या लालच से विदेशी हाथों में खेलनेवाले और अपने देशभक्त साथियों से विश्वासघात करनेवाले देशद्रोही आतंकवादियों को जनता के दु:ख-दर्द से कुछ लेना-देना नहीं होता। इसलिए जनता की भी उनसे कोई सहानुभूति नहीं होती। इतिहास गवाह है कि हर बार हम गद्दारों और अपने बीच के विश्वासघातियों की मुखबिरी के कारण ही हारे। ऐसे गद्दारों ने थोड़े से व्यक्तिगत लाभ के लिए हजारों जानों का पाप अपने सिर लिया और देश को भारी नुकसान पहुँचाने के साथ उसे सदियों पीछे धकेला। उन्हें इतिहास ने कभी माफ नहीं किया; जबकि हर क्रांति के समय शासकों ने क्रांतिकारियों पर कितने ही जुल्म ढाए हों, जनता ने उन्हें सिर-आँखों पर लिया और अनेक कष्ट सहन कर भी समय पर उनका साथ दिया। जनता उनके साथ होती है; क्योंकि वह जानती है कि वे लोग अपने लिए नहीं, अपने किसी लाभ, पद या लालच के लिए नहीं, बल्कि देश की आजादी और समाजहित के लिए लड़ रहे होते हैं। क्रांति आंदोलनों के समय ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे, जब क्रांतिकारियों की छिपे तौर पर मदद करने या उनसे केवल सहानुभूति रखने के जुर्म में ही लोगों को विदेशी शासकों की क्रूर दंडात्मक कार्यवाहियों का शिकार होना पड़ा। इस तरह क्रांतिकारी ही जान हथेली पर लिये नहीं घूमते थे, लोग भी अपनी जान की परवाह न कर उनकी मदद करते थे।

लंबा शृंखलाबद्ध इतिहास

भारत में १८५७ की क्रांति को अंग्रेजों ने 'गदर' की संज्ञा दी थी और इसका कारण बताया था हिंदुस्तानी सिपाहियों द्वारा चमड़े के कारतूस लेने से इनकार करना; जबकि अंग्रेज इतिहासकारों के झूठ की काट बाद के वर्षों में जन-जन के सामने क्रमशः स्पष्ट होती गई है। १८५७ का वह संग्राम कोई सिपाही विद्रोह मात्र नहीं था, शासन के प्रति सैनिक असंतोष, राष्ट्रीय घृणा और जनता की आहत धार्मिक भावना का संयुक्त उभार था, जिसकी भूमिका प्लासी के मैदान में भारतीयों की पहली हार के बाद ही बनने लगी थी। २३ जून, १८५७ को प्लासी हार की शत-वार्षिकी पर बदला लेने का संकल्प लेकर संगठित क्रांति की योजना बनाई गई थी। इसकी बाकायदा तैयारी १८५६ से ही चल रही थी; पर कुछ समय पूर्व ही विस्फोट हो जाने से और समय पर कुछ विश्वासघातियों द्वारा धोखा दिए जाने पर इसकी सफलता संदिग्ध हो गई थी। जन-असंतोष के प्रमाण १८५७ क्रांति से पूर्व के सौ वर्षों में समय-समय पर यहाँ-वहाँ फूटे विद्रोहों से मिलते हैं कि हम इस दौरान भी चुप नहीं बैठे थे। जैसे—

१७६३-८० का संन्यासी विद्रोह, १७६९-८२, फिर १७९४-९५ का मेदिनीपुर का जमींदार विद्रोह और चुआड़ विद्रोह, १८२४ का बैरकपुर का सैनिक विद्रोह और कित्तूर विद्रोह और १८५५ का संथाल विद्रोह। १८५७ की असफल क्रांति के बाद भी, भयंकर दमन कार्यवाहियों के बावजूद, कूका विद्रोह और फिर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में बलवंतराव फड़के और चाफेकर बंधुओं की शहादत। १९०८ के मुजफ्फरपुर कांड के बाद प्रफुल्ल चाकी द्वारा आत्महत्या और खुदीराम बोस को फाँसी। इसी दौरान क्रांतिकारियों की खोज में माणिकतल्ला 'अलीपुर बम केस' में कई लोगों को फाँसी या लंबी कठोर सजाएँ और श्री अरविंद घोष, रासबिहारी बोस सहित अनेक प्रसिद्ध क्रांतिकारियों की फरारी। इसके बाद श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, लाला हरदयाल, भीकाजी कामा, मदनलाल ढींगरा, करतार सिंह सराभा आदि क्रांतिकारियों द्वारा विदेश से क्रांति संचालन द्वारा भारत को आजाद कराने की योजनाएँ।

बंगाल, पंजाब, दिल्ली से लेकर दक्षिण-पश्चिम भारत तक, आंदोलन के साथ १९०९ के अहमदाबाद व नासिक कांड, १९१२ का दिल्ली का 'हार्डिंग बम कांड' तथा १९१४ में इसी सिलसिले में मास्टर अमीरचंद, अवधबिहारी, बालमुकुंद व वसंतकुमार विश्वास को फाँसी और कइयों को लंबी सजाएँ या आजीवन कारावास। मेरठ छावनी में बमों की पेटी के साथ पकड़े जाने पर १९१५ में गणेश

पिंगले को फाँसी, बाघा जतीन व साथियों की मुठभेड़ में हत्या, कइयों की धर-पकड़ तथा लंबी-लंबी सजाएँ और क्रांति-आयोजक श्री रासबिहारी बोस के भारत से प्रस्थान के बाद बड़ी क्रांति योजना की असफलता।

एक दशक के अंतराल के बाद फिर 'काकोरी कांड' (१९२५) के केस मे रामप्रसाद 'बिस्मिल', लाहिड़ी व साथियों को फाँसी, पाँच-छह से चौदह साल तक की लंबी या आजीवन कैद की सजाएँ। १९२८ में 'साइमन कमीशन' के विरोध प्रदर्शन में लाला लाजपतराय की लाठी चार्ज के बाद मृत्यु। इसका बदला लेने के लिए लाहौर में सांडर्स वध, केंद्रीय असेंबली बम कांड, फिर इस 'द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस' में लंबे मुकदमे के बाद २३ मार्च, १९३१ को भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु को फाँसी। इसके पूर्व जेल में दी जानेवाली यातनाओं के विरोध में यतींद्रनाथ दास की लंबी भूख हड़ताल के बाद मृत्यु और २७ फरवरी, १९३१ को इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में क्रांतिकारियों के प्रमुख नेता चंद्रशेखर आजाद की पुलिस मुठभेड़ में शहादत।

१९३०-३४ में बंगाल में प्रसिद्ध 'चटगाँव कांड' सहित उग्र क्रांति गतिविधियाँ। अल्प वय किशोर-किशोरियों द्वारा भी अनेक साहसिक व सफल अभियान। इसके बाद तीव्र दमन कार्यवाहियों के दौरान सैकड़ों क्रांतिकारियों को गोली-फाँसी या उनके द्वारा आत्महत्या। नेता सूर्यसेन को फाँसी, उनके कई साथियों की पुलिस मुठभेड़ों में हत्या, फाँसी या लंबी सजाएँ। और फिर १९४२ के उग्र 'भारत छोड़ो आंदोलन' या भूमिगत आंदोलन के बाद दमन कार्यवाहियाँ। १९४३-४५ आजाद हिंद फौज का सशस्त्र अभियान। १९४६ का नौसेना विद्रोह।

संक्षेप में, डेढ़ शताब्दी से अधिक समय तक बिखरा-फैला यह एक शृंखलाबद्ध पूरा क्रांति-इतिहास है, जिसका मूल्यांकन इस भूमिका में असंभव है। इस पूरे क्रांति-इतिहास में अल्प वय के किशोर-किशोरियों, महिलाओं से लेकर प्रौढ़ों, वृद्धों तक लाखों-लाख लोगों की हिस्सेदारी रही। क्रांति के हर दौर में हजारों अनमोल जानें गई। किंतु विशेष उल्लेखनीय योगदान रहा किशोर-युवा पीढ़ी का। कुछ सौ-हजार नाम उभरकर सामने आए, शेष इतिहास के अँधेरे गर्भ में समा गए। इनमें से युवाओं और प्रौढ़ों (विशेषतया नेताओं और उनसे जुड़े परिवार सदस्यों और कार्यकर्ताओं) की भूमिका पर तो बहुत लिखा गया, स्वयं मैंने महिलाओं की व्यापक भागीदारी को भी अपने ग्रंथ 'महिलाएँ और स्वराज्य' तथा छोटी पुस्तक 'क्रांतिकारी महिलाएँ' के माध्यम से अलग रेखांकित किया है; पर पढ़ने व खाने-खेलने की उम्र के फूल-से कोमल, किंतु ऊर्जा-उमंग से भरे, देशभक्ति के जोश व

सरफराशी की तमन्ना से छलक-छलक पड़ते किशोरों ने जिस तरह हँसते-हँसते सीना तानकर गोलियाँ खाईं, आपस में होड़ लगाकर फाँसी के फंदों को चूमा, लंबी सजा के बदले फाँसी मिलने पर अपनी जीत की घोषणा करते हुए सजा के ऐलान तथा फाँसी के दिन की अवधि के बीच शहादत की खुशी में अपना वजन बढ़ाया, परिवार की ममता और माँओं के आँसुओं से मुँह मोड़, केवल भारत माता को पहचाना, यह अपने आपमें एक अद्भुत मिसाल है। यह सब राम, भरत, लक्ष्मण के देश में ही संभव था।

"अपनी माँ का एकमात्र सहारा होते हुए भी तुमने ऐसा क्यों किया?" काकोरी केस में सबसे छोटी उम्र, साढ़े पंद्रह साल, का होने के कारण पाँच साल की जेल की सजा पाए किशोर रामनाथ पांडेय का उत्तर था—"मैं छोटी और बड़ी माँ के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ, इसलिए।"

इसी तरह क्रांतिकारी तरुण प्रतापसिंह बारहठ को गिरफ्तार कर अपने अन्य साथियों का भेद खोलने के लिए अंग्रेज सरकार ने यातनाएँ देने के साथ अनेक लालच भी दिए—जेल से रिहाई, पैतृक संपत्ति लौटाना, चाचा का वारंट रद्द करना आदि, ताकि वह अपनी माँ के पास जा उसका रोना भी बंद कर सके, पर कुँवर बारहठ का उत्तर था—"मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं कुछ नहीं बताऊँगा; आपको जो करना है, कर लें और मेरी माँ को रोने दें कि देश की हजारों माँएँ न रोएँ।" और प्रतापसिंह बारहठ जेल में अमानवीय यातनाएँ सहते हुए शहीद हो गया।

खुदीराम बोस व कन्हाई का किशोर उम्र में फाँसी चढ़ना। पूर्वी बंगाल (अब बँगलादेश) की दो स्कूली लड़कियों द्वारा अपनी जान पर खेल, त्रिपुरा जिले के मजिस्ट्रेट स्टीवेंस के बंगले की कड़ी सुरक्षा को भेद, बंगले के भीतर प्रवेश कर स्टीवेंस पर गोली चलाकर उसका काम तमाम कर देने के बाद विजय से मुसकराते हुए अपनी गिरफ्तारी देना। सूर्यसेन, भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, बिस्मिल, मोती लाल के अनेक किशोर साथियों (लड़के-लड़कियाँ दोनों) के साहसिक कारनामे। इसके पूर्व प्रवासी भारतीयों में 'गदर' अखबार के सबसे कम उम्र के संपादक करतारसिंह की शचींद्र सान्याल, रासबिहारी बोस, गणेश पिंगले आदि प्रौढ़ क्रांतिकारियों के साथ मिलकर पूरे भारत में क्रांति करने की व्यापक योजना बनाना और फिर विश्वासघाती मुखबिर द्वारा क्रांति को विफल किए जाने पर अंग्रेजों की दमन कार्रवाई का शिकार हो फाँसी चढ़ जाना। इस क्रांति के लिए विदेश से हथियार मँगाने की योजना भी एक देशद्रोही मुखबिर द्वारा विफल कर दिए जाने पर बाबा जतीन के लगभग सभी किशोर साथियों का घटनास्थल पर मुठभेड़ में मारा जाना, फाँसी चढ़ना

अथवा नौ जल-सजाएँ पाना। १९४२ के आंदोलन में पटना सचिवालय पर झंडा फहराने के प्रयत्न में एक के बाद एक छह छात्रों का गोली खाकर दम तोड़ना। असम की किशोरी कनकलता, सिंध के किशोर हेमू कलानी की शहादत। पूरा आजादी इतिहास ऐसी मिसालों से भरा पड़ा है। यद्यपि सारे देश में किशोर-किशोरियाँ क्रांति के हर दौर में सक्रिय रहे, बंगाल के अल्प वय के लड़के-लड़कियों की संख्या उनमें सर्वाधिक थी। पूरे नाम तो गिनाए भी नहीं जा सकते।

आज की किशोर पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी की इन कुरबानियों व शहादतों को जाने, पहचाने, इससे प्रेरणा लेकर अंग्रेजी हुकूमत के बाद अब वर्तमान भारत के भ्रष्टाचार व आतंकवाद के दैत्यों से लड़ने के लिए आगे आए, अपसंस्कृति के सामाजिक प्रदूषण की काट के लिए स्वतंत्रता सेनानी क्रांतदर्शी किशोर पीढ़ी के नैतिक आचरण से कुछ ग्रहण कर सके, अपने भीतर वैसा जज्बा पैदा कर देश के नव-निर्माण की भागीदार बने, इसी उद्देश्य को समर्पित है मेरी यह पुस्तक।

सैकड़ों नाम अभी खोजे जाने के लिए इधर-उधर गुमनामी में पड़े हुए हैं। बहुत सी कहानियाँ बुजुर्ग स्वतंत्रता सेनानियों के साथ ही समाप्त होती जा रही हैं। विवरण दर्ज नहीं किए गए, इसलिए अनेक नाम केवल प्रसिद्ध क्रांतिकारियों के साथी रूप में क्रांति गतिविधियों में शामिल भर दिखाए गए हैं। स्वतंत्रता संग्राम पर मेरे व्यापक अध्ययन के बावजूद, खोज की अपनी सीमाएँ होती हैं और पुस्तक के आकार की अपनी। इस विषय पर राष्ट्रव्यापी योजनाबद्ध कार्य के लिए देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों को आगे आना चाहिए, उनसे इस अपेक्षा के साथ प्रस्तुत पुस्तक भारत की 'स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती' को भी समर्पित है।

इस पुस्तक को लिखने में जिन पुस्तकों, दस्तावेजों, पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली गई है, उन सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन के अतिरिक्त, निकट, दूर के उन साथी सभी रचनाकारों के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिनसे प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष सहायता मिली। क्रांतिकारियों, विशेषतया पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' पर कार्य करनेवाले श्री मदनलाल वर्मा 'क्रांत', जिन्होंने पूर्व पुस्तकों में दर्ज कई भूलों-भ्रांतियों के निवारण में मदद की, के प्रति विशेष आभार।

पुस्तक कैसी है? प्रयत्न कितना सार्थक है? नई पीढ़ी में प्रेरणा का संचार करने में यह कितनी समर्थ होगी? इसका निर्णय आप सब पाठकों के ही हाथ में।

—आशारानी व्होरा

बी २७ ए, सेक्टर १९,
नोएडा २०१३०१

भाग—१

(क्रांति के प्रथम दौर में किशोर)

आदिवासी देशभक्त

तिलका माँझी

तिलका माँझी

सन् १८५७ की क्रांति से पहले की बात है, जब संथाल परगना के जंगली पहाड़ी इलाकों में छिपकर आदिवासियों ने अंग्रेजों के जुल्म के खिलाफ लड़ाइयाँ लड़ी थीं। संथाल क्रांतिकारी तिलका माँझी इसी लड़ाई में एक नायक बनकर उभरा था।

तिलका माँझी का जन्म ११ फरवरी, १७५० को भागलपुर जिले के 'तिलकपुर' गाँव में हुआ था। मात्र अठारह वर्ष की अल्पायु में इस वनवासी युवक ने संथाल

परगना क्षेत्र से अन्यायी ब्रिटिश सरकार को खदेड़ने का निश्चय किया और सामंती व्यवस्था से खुलकर संघर्ष किया।

अंग्रेजी सरकार की सामंती और दमनकारी प्रवृत्तियाँ जब हद से बढ़ गई थीं और वनवासी उनके जुल्म से परेशान हो उठे थे, तब तिलका माँझी ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ भागलपुर और संथाल परगना के पहाड़ी इलाकों में छिपकर कई छापामार लड़ाइयाँ लड़ी थीं। उसके हमलों से परेशान होकर क्षेत्र का ब्रिटिश प्रशासनिक अधिकारी क्लीवलैंड ब्रिटिश फौज को साथ लेकर उसे पकड़ने के लिए आया। ब्रिटिश फौज तोपों और बंदूकों से लैस थी। तिलका माँझी की सेना के हथियार मात्र तीर-धनुष ही थे; फिर भी ब्रिटिश सेना को मुँह की खानी पड़ी।

एक दिन अधिकारी क्लीवलैंड घोड़े पर सवार होकर जंगल में जा रहा था। तिलका माँझी पहले से ही रास्ते में ताड़ के पेड़ पर धनुष बाण लेकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। जैसे ही क्लीवलैंड का घोड़ा पेड़ के नीचे आया, तिलका माँझी ने निशाना साधकर तीर से उसकी छाती को बेध दिया। क्लीवलैंड घोड़े से नीचे गिर गया और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई।

इस घटना से ब्रिटिश सरकार तिलमिला गई। उसने हर हालत में तिलका माँझी को गिरफ्तार करने का निश्चय किया। एक बड़ी फौज लेकर भागलपुर की उस पहाड़ी को घेर लिया गया, जहाँ तिलका माँझी अपने साथियों के साथ युद्ध की योजनाएँ बनाया करता था और जहाँ से वह छापामार लड़ाइयाँ लड़ता था। तिलका माँझी और उसके साथियों ने इस घेराबंदी के खिलाफ जमकर संघर्ष किया। ब्रिटिश फौज के साथ लड़ाई में लगभग तीन सौ वनवासी शहीद हुए। इनमें तिलका माँझी के चार भाई और उसकी पत्नी भी शामिल थे।

अंत में ब्रिटिश फौज ने तिलका माँझी को धोखे से गिरफ्तार कर लिया और अंग्रेजों ने उसे तरह-तरह की यातनाएँ दीं। घोड़े के साथ बाँधकर उसे भागलपुर की सड़कों पर सरेआम घसीटा। फिर मरणासन्न स्थिति में उसे बरगद के पेड़ पर उल्टा लटका दिया, जहाँ उसने अपने प्राण त्यागे।

आजादी की लड़ाई के लंबे इतिहास के शुरुआती दौर में क्रांतिकारी तिलका माँझी ने अपनी आहुति दी थी। तिलका माँझी जहाँ शहीद हुए, भागलपुर शहर में उस जगह का नाम 'तिलका माँझी चौक' रख दिया गया है। इस चौक पर तिलका माँझी की विशाल प्रस्तर प्रतिमा खड़ी है— आनेवाली पीढ़ियों को राष्ट्रहित में बलिदान देने की प्रेरणा देती हुई।

□

चिता पर जीवित जलाई गई

कुमारी मैना

कुमारी मैना

सन् १८५७ के संग्राम की शहीद नारियों में नाना साहब की चौदह वर्षीय सुकुमार दत्तक बेटी मैना की कहानी बहुत दर्दनाक है। विद्रोहियों ने कानपुर की गद्दी पर नाना साहब को आसीन किया। उसके दूसरे दिन क्रांति सैनिकों द्वारा उनके सामने कई गोरी स्त्रियाँ और बच्चे पकड़कर लाए गए कि नाना उन्हें दंड दें।

पर एक सच्चे भारतीय नेता को यह कैसे स्वीकार होता! उन्होंने कहा,

"निहत्थे स्त्री-बच्चों को मारना कायरता ही नहीं, पाप भी है। यह अपयश का काम है। इतिहास इसके लिए हमें कभी क्षमा नहीं करेगा।" इसके बाद नाना साहब ने उन स्त्री-बच्चों की जिम्मेदारी अपनी किशोरी बेटी मैना को सौंपते हुए उसे उन सबको सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने का आदेश दिया और स्वयं बिठूर की ओर कूच कर गए।

मैना शरणागतों को लेकर एक अंगरक्षक श्री माधव के साथ गंगातट पर पहुँची। वहाँ उसे अपने एक खास आदमी से खबर मिली कि नाना साहब के कानपुर छोड़ने के बाद शीघ्र ही अंग्रेज फौज कानपुर पर चढ़ दौड़ी है और उनके सैनिक महिलाओं की इज्जत के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। दुधमुँहे बच्चों तक को नहीं बख्श रहे हैं। यह सुनकर मैना का खून खौल उठा, उसने उन गोरी स्त्री बच्चों की ओर जलती नजरों से देखा। पर तुरंत ही उसे अपने पिता का आदेश याद आ गया। उसने अपने अंगरक्षक माधव से कहा, "इन लोगों को सुरक्षित स्थान पर छोडकर हम शीघ्र ही लौटेंगे। फिर मैं अत्याचारी फिरंगियों से गिन गिनकर बदला लूँगी।" पर अभी उसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि अंग्रेजों की एक टुकड़ी वहाँ भी आ पहुँची। माधव मारा गया और मैना पकड़ ली गई।

नाना की लड़की है मैना, यह परिचय मिलते ही अंग्रेज सैनिकों ने अन्दाजा किया कि तगड़ा माल हाथ लगा है और अब उनके लिए विद्रोहियों को पकड़ना आसान हो जाएगा। पर मैना तो पेशवा की बेटी थी। उसे तरह तरह के लालच दिए गए, धमकियाँ दी गईं कि वह अपने अन्य साथियों का पता बता दे। पर मैना टस से-मस न हुई; चट्टान की तरह अडिग रही। उसे पेड़ से बाँधकर भयंकर यातनाएँ दी गईं। प्यास के मारे उसका गला सूख गया, होंठों पर पपड़ियाँ जम गईं। पर उसे माँगने पर भी पानी की एक बूँद तक नहीं दी गई।

अब उसे डराने के लिए पेड़ के चारों ओर लकड़ियाँ चुनकर चिता बना दी गई। उससे कहा गया—"अब भी समय है, बता दो, नहीं तो जिंदा भूनकर रख देंगे।" उत्तर में मैना ने उनके मुँह पर थूक दिया। चिता में आग लगा दी गई। फिर भी वह न चीखी, न चिल्लाई; उसने कसकर होंठ भींच लिये। चिता से अधजली हालत में निकालकर उससे फिर पूछा गया कि अभी भी उसकी जान बख्शी जा सकती है, यदि वह जो पूछा जाए, सब बता दे। लेकिन उन जख्मों की पीड़ा झेलते हुए भी मैना ने उफ तक न की। हारने झुकने के बजाय वह विद्रूपता से हँस पड़ी कि कर लो, जो करना हो, वह कुछ नहीं बताएगी। उसे दोबारा चिता में झोंक दिया गया।

उसके जल जाने पर उसे आग के हवाले करनेवाले अधिकारी को लगा

सी लड़की ने उसके गाल पर भरपूर तमाचा जड़ दिया है
ात स्त्रियो, बच्चो की आँखो में आँसू आ गए थे। पर वे मैना
ने इतने सारे लोगों की जानें बचाकर भी अपनी उस संरक्षिका देव
ान न बचा पाए।
को अपनी इस बलिदानी बेटी पर हमेशा गर्व रहेगा।

कूका विद्रोह में हाथ कटानेवाला बालक

गुरुमुख सिंह

नामधारी संप्रदाय की स्थापना करनेवाले सद्गुरु रामसिंह कूका यों तो ईश्वर भक्ति में लीन रहनेवाले भक्त थे, पर १८५७ की क्रांति के बाद अंग्रेजों की भारतीयों से बदले की भावना से की गई क्रूर दमन कार्यवाहियों के लिए वे उनको क्षमा नहीं कर सके। इसलिए उन्होंने अपने भक्त चेलों को भजन, ध्यान के साथ अंग्रेज सरकार से असहयोग करने की सलाह दी। गांधीजी से पूर्व शायद यह पहला 'असहयोग आंदोलन' था, जिसमें सरकारी नीतियों का विरोध ही नहीं, उनकी वस्तुओं और सेवाओं का बहिष्कार भी शामिल था।

जाहिर है, अंग्रेजों को यह सहन न होता और वे सब लोग गिरफ्तार कर लिये जाते और उनका संगठन भंग कर दिया जाता। इसलिए पाँच साल तक कूकाओं की गतिविधियाँ गुप्त रूप से चलीं, फिर संदेह का निवारण हो जाने पर ही वे सामने आए। इस बीच चेले भजन-ध्यान के साथ कसरत द्वारा अपनी शरीर शक्ति भी बढ़ाते रहे कि वक्त पर अंग्रेजों से लड़ सकें—ठीक संन्यासी विद्रोह के संन्यासियों की तरह ही। फिर उन्होंने गरीब भारतीयों की मदद के लिए और अंग्रेजों को अत्याचार करने से रोकने के लिए अपनी शक्ति दिखाने की ठानी। इसके लिए बाहर आकर संघर्ष छेड़ना जरूरी था।

पूरे पंजाब को बाईस हिस्सों में बाँटकर एक-एक व्यक्ति के अधीन कर दिया गया और गुप्त रूप से अस्त्र-शस्त्र एकत्रित किए जाने लगे। जाहिरा जब ये गुरु-चेले बाहर निकलते, अपने मुँह से ईश्वर को पुकारने के लिए जोर से कूक निकालते कि अंग्रेजों तक उनकी आवाज की हुंकार पहुँच जाए और वे उनकी भक्ति की शक्ति पहचानकर न उन्हें छेड़ने का साहस करें, न असहाय लोगों पर जुल्म ढाने की हिमाकत करें। आवाज की इसी कूक के कारण ये लोग 'कूका'

कहलाए। फिर जब इनके द्वारा सरकारी सेवाओं का बहिष्कार और डाक आदि ले जाने की इनकी समानांतर व्यवस्था देखी तो अंग्रेज सतर्क हो उठे। इनपर निगाह रखी जाने लगी।

सद्गुरु रामसिंह अपनी शक्ति पूरी तरह बढ़ाए बिना अंग्रेजों से टक्कर नहीं लेना चाहते थे। पर उनके चेले उत्साह में हर समय कुछ करने के लिए बेताब रहते। एक बार यात्रा करते समय वे बूचड़ों पर पिल पड़े, क्योंकि वे गायें काटते थे। सरकार को बहाना मिल गया और इनपर अत्याचार होने लगे। गुरु के समझाने पर दोषी चेलों ने आत्मसमर्पण कर दिया। पर चेलों का जोश इससे मंद नहीं हुआ बल्कि और उबल गया। उन्होंने मलेरकोटला से भैणी जाते हुए १३ जनवरी, १८७२ को, गुरु से आज्ञा लिये बिना, मलेरकोटला किले पर हमला बोल दिया। हमला पूरी तैयारी बिना असफल रहा और छियासी कूका पकड़कर, तोप के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिए गए। हमला मलेरकोटला रियासत के विरुद्ध था, पर अंग्रेजों ने अपने विरुद्ध समझ यह क्रूर दमन कार्यवाही कर दी कि अन्य लोग सिर न उठा सकें।

विद्रोहियों को तोप से उड़ाने का काम अंग्रेज खुद कर रहे थे। इनमें कई चेले कम उम्र के किशोर व नवयुवक भी थे। पर तेरह साल के एक लड़के ने तो कमाल ही कर दिया। जब उसे तोप के मुँह पर बाँधने का नंबर आया तो उसकी बहुत कम उम्र देखकर एक अंग्रेज महिला को उसपर तरस आ गया। वह बीच में उसे बचाने के लिए आ गई। अधिकारी ने कहा, "अच्छा छोड़ देंगे, यदि यह बच्चा माफी माँग ले।" इसपर कूका बालक भड़क गया और ऐसा कहनेवाले अंग्रेज अधिकारी पर पिल पड़ा। उसने अधिकारी की दाढ़ी कसकर पकड़ ली और उसे खींचकर अधिकारी को कष्ट पहुँचाने लगा। कई लोगों ने बीच-बचाव किया; पर उस बालक ने किसी भी तरह दाढ़ी नहीं छोड़ी, न कोई उसके हाथ की पकड़ ढीली कर पाया। वह मजबूती से दाढ़ी पकड़े उस अंग्रेज को खींच-खींचकर झटके देता जाता था और कहता जाता था—"नहीं छोड़ूँगा। इसे मजा चखाकर रहूँगा कि आगे किसीको ऐसे तोप से बाँधकर न उड़ा सके।" पर कहाँ अंग्रेजी हुकूमत की ताकत, जुल्मी हरकतें और कहाँ उस तेरह वर्षीय किशोर का मुकाबला! आखिर उसके हाथ काटकर उसके हाथ से दाढ़ी छुड़ा ली गई; फिर तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए। यह थी उसके नन्हे, लेकिन मजबूत इरादे से दी गई शहादत। इतिहास में कई जगह यह शहादत दर्ज है, पर बालक का नाम नहीं। तो जनता ने उसे गुरु का सच्चा भक्त होने के कारण उसका नाम रख दिया गुरुमुखसिंह (यह बात मुझे एक नामधारी सरदार ने बताई थी)। और गुरुमुखसिंह टुकड़े-टुकड़े होकर भी हजारों-

हजार साल के लिए जन-मन मे जीवित हो उठा।

मलेरकोटलावाली घटना में सद्गुरु रामसिंह का कोई भाग
इसके बाद उन्हें भी गिरफ्तार करके बर्मा जेल में भेज दिया गया।
हुई, साथ ही उनके द्वारा देखे गए स्वप्न की भी, जिसे उनके चेला
में समय से पूर्व भंग कर दिया था।

छोटे भाई का कमाल

वासुदेव चाफेकर

वासुदेव चाफेकर

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के प्रारंभिक दौर में दो परिवार विशेष ख्यात हुए—चाफेकर बंधु और सावरकर बंधु। इनमें से चाफेकर बंधु पहले आगे आए। चाफेकर तीन भाई थे—दामोदर हरि चाफेकर, बालकृष्ण चाफेकर और वासुदेव चाफेकर। वासुदेव सबसे छोटे थे। इस लेख का संबंध उन्हींसे है।

दिसंबर १८९६ में महाराष्ट्र में भयंकर प्लेग फैला। इसकी रोकथाम के लिए

पूना में अंग्रेज अधिकारी रैंड को नियुक्त किया गया। यह अधिकारी बहुत क्रूर था। प्लेग की रोकथाम के बहाने इसने पूना नगर में लोगों पर बहुत जुल्म किए। प्लेग कैंप की हालत ऐसी थी कि लोगों ने बाहर मरना पसंद किया, पर उन्हें फौजी पहरे से घेरकर इस तरह प्लेग कैंप ले जाया गया जैसे वे कैदी हों। जाँच व तलाशी के बहाने घरों में घुसकर औरतों को बेइज्जत किया गया। जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। इसका बदला लेने के लिए ही चाफेकर बंधु आगे आए थे।

इन तीनों भाइयों का अपने कीर्तनकार पिता के साथ कीर्तन में बैठने में मन नहीं रमता था। दामोदर चाफेकर ने दो बार फौज में भरती होने की कोशिश की, पर अंग्रेज मराठा ब्राह्मणों को फौज में लेते ही न थे। तो उन्होंने अपने ढंग की फौजी ट्रेनिंग के लिए अखाड़ा खोल लिया। कसरत करते थे और अंग्रेजों को इस देश से भगाने का संकल्प ले, उनके विरुद्ध विद्रोह करना चाहते थे। प्लेग की घटना व उस समय किए गए रैंड के अत्याचार उनके लिए कुछ करने का बहाना बन गए। तीन महीने तक उन्होंने रैंड की असह्य हरकतों को परखा, देखा, फिर उसे खत्म कर देने की योजना बना ली।

रैंड की हरकतों पर निगरानी रखकर उसकी सारी रिपोर्ट बड़े भाई को देने के काम में सबसे छोटे भाई वासुदेव ही तैनात किए गए थे। फिर २२ जून, १८९७ को विक्टोरिया की हीरक जयंती की पार्टी से लौटते समय रात साढ़े ग्यारह बजे बग्घी के पीछे से चढ़कर दामोदर ने रैंड की पीठ में गोली दाग दी और तुरंत कूदकर झाड़ियों में लापता हो गए। दूर खड़े मझले भाई बालकृष्ण ने रैंड की पहचान की थी और वासुदेव भी घटनास्थल पर उपस्थित थे। रैंड एक चीख के साथ गिर पड़ा। कुछ दिन बाद अस्पताल में उसकी मृत्यु हो गई। तीनों भाई भाग निकले।

जयंती उत्सव का राग-रंग शोक में बदल गया। चारों ओर सनसनी मच गई कि १८५७ के विद्रोह के बाद इस तरह की यह पहली घटना थी। रैंड के पीछे आ रहा एक लेफ्टिनेंट एयर्स्ट भी बालकृष्ण की गोली से घटनास्थल पर ही मारा गया था। जब बीस हजार का इनाम घोषित करने पर भी हत्यारे नहीं पकड़े गए, तो भड़कानेवाले आपत्तिजनक लेख लिखने के जुर्म में लोकमान्य तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया। इनाम के लालच में दामोदर के साथियों में से गणेशशंकर और रामचंद्र द्रविड़ जब मुखबिर बन गए, तब ९ अगस्त को दामोदर पकड़े गए। बालकृष्ण निजाम राज्य के जंगल में जाकर भूमिगत हो गए थे। कुछ समय बाद वहाँ से लौटने पर वह भी पकड़ लिये गए।

छोटे भाई वासुदेव के विरुद्ध कोई प्रमाण न था। पर घटनास्थल पर उपस्थित रहने के कारण उन्हें हर रोज थाने में हाजिरी लिखानी पड़ती थी। उन्हें मुखबिर बन जाने के लिए खूब प्रलोभन दिया गया। वासुदेव ऊपर से यह बात मान गए, पर भीतर से दामोदर को पकड़नेवाले पुलिस इंस्पेक्टर और पकड़वानेवाले मुखबिरों से बदला लेने के लिए उबल रहे थे। पर मुखबिरों के निकट आने के लिए जाहिरा तौर पर उनसे मिले रहना जरूरी था, तो वह कुछ समय के लिए मुखबिर का कलंक अपने ऊपर लेकर भी अंत में अपने उद्देश्य को पूरा कर सके। अपने मित्र रानडे को साथ लेकर वे इस काम के लिए निकल पड़े और ८ फरवरी की रात उन्हें घर से सड़क पर बुलाकर वासुदेव ने गणेशशंकर को और रानडे ने रामचंद्र को गोली मार दी। भारत में देशद्रोही मुखबिरों की अपने पूर्व साथियों द्वारा यह पहली हत्या थी।

वासुदेव की नकली मुखबिर बनने की असलियत सामने आ गई थी। गिरफ्तारी से पहले उन्होंने घटना की जाँच करने आए पुलिस सुपरिंटेंडेंट को भी गोली मारने की कोशिश की। निशाना चूक गया और उनकी पिस्तौल छीन ली गई। अदालत में मुसकराते हुए वासुदेव ने कुछ भी न छिपाकर सब सच बता दिया; क्योंकि वे भी दामोदर और बालकृष्ण के साथ फाँसी चढ़ना चाहते थे। ८, १० और १२ मई, १८९८ को क्रमशः वासुदेव, रानडे, बालकृष्ण को यरवदा जेल में फाँसी दे दी गई। दामोदर इसके पूर्व ही तिलक से माँगी गई 'गीता' हाथ में लेकर १८ अप्रैल को इसी जेल में फाँसी पर चढ़ चुके थे। मृत्यु से पूर्व भी उन्होंने गीता नहीं दी. उनके शव की कसी उँगलियों से भी गीता नहीं निकाली जा सकी थी।

इन फाँसियों से सारा देश सिहर उठा था। वासुदेव और रानडे की तो उम्र भी बीस से कम थी। दमन के उस दौर में, जब चारों ओर धर-पकड़ थी, तिलक के अंतरंग साथी श्यामजी कृष्ण वर्मा चुपचाप इंग्लैंड निकल गए। बाद में प्रवासी क्रांतिकारियों में उनकी अग्रणी भूमिका सर्वविदित है। यहाँ कारुणिक स्थिति यह कि तीन बेटों को एक साथ खो देनेवाली चाफेकर बंधुओं की वृद्धा माँ के आँसू पोंछने के लिए भी कोई न था। दामोदर चाफेकर को उकसानेवाले लेख लिखने के जुर्म में तिलक पहले ही जेल में थे। पकड़े जाने के डर से अन्य क्रांतिकारी भी सामने नहीं आ रहे थे और अंग्रेजों का कहर उनपर न टूटे, इस भय से रिश्तेदार और पड़ोसी भी बेचारी अकेली माँ को सांत्वना देने सामने नहीं आ रहे थे। ऐसे समय बंगाल से चलकर भगिनी निवेदिता ही उस वीर माँ के दर्शन करने और उसे ढाढ़स बँधाने पूना आई थीं; क्योंकि वह क्रांतिकारियों से सहानुभूति रखती थीं और अपने

पकडे जाने का उन्हें कोइ भय नहा था।

इस तरह 'एक्शन' में सीधे भागीदार न होकर भी [illegible] [illegible] वासुदेव व उनके साथी रानडे ने अंग्रेजों के जुल्म तथा अपने भाइयों का ले लिया और उनके साथ ही फाँसी चढ़ गए। यही परंपरा आगे [illegible] [illegible] ने भी निभाई।

जैक्सन पर गोली दागनेवाला

अनंत लक्ष्मण कान्हरे और उसके साथी
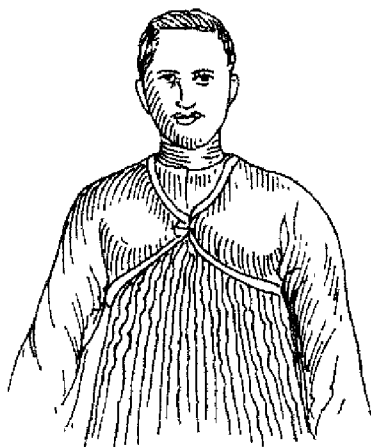
अनंत लक्ष्मण कान्हरे

सन् १९०५ के 'बंग-भंग' विरोधी आंदोलन ने जब 'स्वदेशी आंदोलन' और 'विदेशी वस्तु बहिष्कार' आंदोलन का रूप ग्रहण किया तो यह लहर बंगाल तक सीमित नहीं रही। सारे देश में विद्रोह की चिनगारियाँ भड़क उठी थीं। २१ दिसंबर, १९०९ को नासिक में हुई कलेक्टर जैक्सन की हत्या इसी विद्रोह की एक मुखर अभिव्यक्ति थी।

वीर गणेश सावरकर को कालापानी की सजा हुई थी। उनके छोटे भाई विनायक दामोदर सावरकर लंदन में क्रांति की बागडोर सँभाले हुए थे। इन्हीं की प्रेरणा से अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष बढ़ रहा था। अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकें हो रही थीं। ब्रिटिश सरकार को इसकी भनक मिली तो स्थिति को नियंत्रण में लाने के लिए उसने जैक्सन जैसे क्रूर शासक को वहाँ नियुक्त कर दिया।

जैक्सन अपनी दमन नीति के कारण बदनाम था। उसने 'वंदेमातरम्' कहने तक पर रोक लगा दी थी। कोई 'वंदेमातरम्' का उच्चारण करता तो उसकी पीठ पर कोड़े बरसाए जाते। कोई अपने भाषण या प्रवचन में देशभक्ति का भाव प्रकट करता तो उसे जेल में बंद कर दिया जाता। एक दिन गोल्फ मैदान में विलियम नाम का एक अंग्रेज गोल्फ खेल रहा था। उसकी गेंद एक किसान की बैलगाड़ी के नीचे आ गई। किसान का कसूर केवल इतना था कि उसने गेंद उठाकर विलियम के हाथ में नहीं दी। इसपर विलियम ने उसे इतना पीटा कि वह मर गया। विलियम पर खून का मुकदमा चला, लेकिन जैक्सन ने उसे निर्दोष साबित कर दिया। जैक्सन के ऐसे कारनामों से उसके प्रति घृणा और असंतोष की आग भड़क उठी थी। क्रांतिकारियों ने निश्चय किया कि जैक्सन के अत्याचारों का अंत करने के लिए उसे खत्म ही करना होगा।

अनंत लक्ष्मण कान्हरे नाम के एक किशोर ने मन ही मन इस कार्य के लिए संकल्प किया और वह क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकों में सम्मिलित होने लगा। जब जैक्सन की हत्या की योजना बनी, दिन, तारीख, समय, स्थान निश्चित हुआ, तब अनंत ने आगे होकर इस कार्य का जिम्मा अपने ऊपर ले लिया। रत्नागिरि जिले के निवासी अनंत की उम्र उस समय सत्रह वर्ष की ही थी। औरंगाबाद के स्कूल में पढ़ते समय ही उसके साहस के कारनामे प्रसिद्ध हो गए थे। खेलकूद में हर समय वह आगे रहता था। व्यायाम से उसने अपना शरीर भी सुगठित बना लिया था।

ऐसे निडर और साहसी अनंत कान्हरे जब अंग्रेजों के, विशेष रूप से जैक्सन के क्रूर कारनामे सुनता तो उसका कच्चा किशोर मन उबलकर विद्रोह के लिए जाग उठता। अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए कुछ कर दिखाने के भाव ने ही उसे क्रांति गतिविधियों से जोड़ दिया था।

जब अनंत कान्हरे ने जैक्सन को खत्म करने का जिम्मा लिया तो वह उसकी योजना बनाकर उस दिशा में सक्रिय भी हो गया। कलेक्टर कचहरी के पास खड़े होकर दो-तीन बार उसने जैक्सन को देखकर अच्छी तरह पहचान लिया था। फिर

मौके की तलाश में लग गया। उसे पता चला कि २१ दिसंबर को नासिक शहर के विजयानंद थिएटर में 'शारदा नाटक' देखने के लिए कलेक्टर जैक्सन आने वाला है। यह समाचार गुप्त न था। सारे शहर को इसकी खबर थी। अनंत ने सोचा, यहीं मौका ठीक रहेगा। उसने उसका लाभ उठाया और पहले से जाकर थिएटर में बैठ गया।

विजयानंद थिएटर में उस दिन नाटकप्रेमी स्त्री-पुरुष सज धजकर सैलाब की तरह उमड़े जा रहे थे। पूरा वातावरण फूलों की सुगंध और उत्साह के उल्लास में पूरित था। हाल खचाखच भर गया। आगे की कतार में कुरसी पर बैठे दो युवक और एक उसके पीछेवाली कतार में। सभी दर्शकों की आँखें रंगमंच की ओर थीं कि कब परदा खुले और नाटक शुरू हो, लेकिन इन युवकों की निगाहें थिएटर के द्वार की ओर लगी थीं कि कब जैक्सन आए और वे अपने काम के लिए मुस्तैद हो जाएँ।

अंततः परदा उठने का क्षण नजदीक आया। ठीक नौ बजे थिएटर के बाहर एक मोटर गाड़ी आकर रुकी। उसमें से एक ऊँचा, लंबा, रोबदार चेहरेवाला गोरा अंग्रेज अपनी पत्नी के साथ बाहर आया। थिएटर के अधिकारी भागकर स्वागत के लिए आगे बढ़े और आदर से उसे भीतर बुला ले गए। सबसे आगे की कुरसी पर इस मुख्य अतिथि को बैठाया गया। तभी आगे की पंक्ति में बैठे अनंत कान्हेरे ने फुरती से अपने कोट की जेब से भरी पिस्तौल निकालकर मुख्य अतिथि जैक्सन पर गोलियाँ दाग दीं। पहला वार ऊपर से निकल गया तो तीनों ओर से तुरंत गोलियाँ उसपर खाली कर दी गईं। खून से लथपथ जैक्सन वहीं गिर गया। शारदा नाटक प्रारंभ होने से पहले ही थिएटर के भीतर यह भयानक नाटक घटित हो गया।

तीन व्यक्तियों के इस दल का मुखिया था—अनंत कान्हेरे, जिसे घटनास्थल पर ही पकड़ लिया गया। उसके दो साथी थे, विनायक नारायण देशपांडे और कृष्ण गोपाल कर्वे। इन्हें अनेक प्रकार की यातनाएँ दी गईं कि वे अपने अन्य साथियों का पता-ठिकाना बताएँ; लेकिन क्रांतिकारियों का यह धर्म नहीं था। वे यातनाएँ झेल गए, लेकिन मुँह नहीं खोला। तीनों पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई। लेकिन फाँसी की सजा सुनकर उस समय क्रांतिकारी निराश होने की बजाय खुश होते थे कि उन्हें लंबे समय तक जेल में नहीं सड़ाया जाएगा। इसीलिए सजा सुनाने और फाँसी के बीच की अवधि में उनका वजन कई पौंड बढ़ गया था।

१० अप्रैल, १९१० को सुबह तीनों ने स्नान किया। हाथ में 'भगवद्गीता' लिये हुए तीनों क्रांतिवीर बड़े शांत भाव से फाँसी के तख्ते की ओर बढ़े।

अनत ने अपने कुरते की जेब मे एक कागज लिखकर डाल लिया था जिसपर लिखा था— मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया। मुझे जैक्सन को मारने का जरा भी अफसोस नहीं है। जो जनता के साथ विश्वासघात करता है, उसे दंड मिलना ही चाहिए। इस दंड की जिम्मेदारी मुझपर सौंपी गई थी और मैंने पवित्र कर्तव्य समझकर इसे पूरा किया, इसके लिए मुझे अपने आप पर गर्व है। भारत माता की बेड़ियों को नृशंसतापूर्वक कसने का अपराध जो भी करे, उसपर जरा भी दया न दिखाएँ, यही मेरी जनता से अपील है।'

भाग–२

(क्रांति का द्वितीय दौर)

अलीपुर बम केस

वारींद्र घोष व उनके नवयुवक साथी

वारींद्र घोष

श्री अरविंद के छोटे भाई वारींद्र बारह वर्ष के थे कि उन्हें पाश्चात्य ढग से पालने-पढ़ानेवाले उनके पिता चल बसे। वारींद्र बड़ौदा में अपने बड़े भाई अरविंद घोष, जो उस समय महाराजा कॉलेज, बड़ौदा में प्राध्यापक थे, के पास जाकर पढ़ने लगे। पर पढ़ाई से ज्यादा उनका मन कविता में रमता था। स्कूली जीवन में उन्होंने एक हस्तलिखित पत्रिका भी निकाली। उनके क्रांति-चरित्र के

निर्माण में प्रारंभिक दौर के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी उनके नाना श्री राजनारायण बसु और चंदौत के स्वामी सरवरिया का काफी हाथ था। स्वामी सरवरिया १८५७ में रानी झाँसी की सेना में रहकर अंग्रेजों से लोहा ले चुके थे और अब क्रांतिकारी नवयुवकों को दीक्षा दे रहे थे।

कुछ समय वारींद्र कलकत्ता और बड़ौदा आते जाते रहे, फिर १९०४ में कलकत्ता आ गए और १९०५ के 'बंग-भंग' से उत्तेजित नवयुवकों को संगठित करने लगे। सुप्रसिद्ध 'अनुशीलन समिति' की स्थापना और 'युगांतर' पत्र का प्रकाशन—ये दो महत्त्वपूर्ण कार्य हाथ में लेकर उन्होंने क्रांति इतिहास में अपना स्थान बनाया। गुप्त अनुशीलन समिति की गतिविधियाँ ढाका और कलकत्ता में संचालित हो रही थीं। ढाका में पुलिनबिहारी दास के नेतृत्व में अनेक युवक व किशोर क्रांतिकार्य में दीक्षित हुए। कलकत्ता में 'युगांतर' ने अधिक धूम मचाई इसलिए संपादक भूपेंद्रनाथ दत्त को देशद्रोह के अपराध में जेल भेज दिया गया। उस समय के अन्य प्रसिद्ध पत्रों—'संध्या', 'वंदेमातरम्' आदि पर भी रोक लगाकर संपादकों को लंबी जेल-सजाएँ दी गई। कलकत्ता का चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड अपने ऐसे कारनामों और 'वंदेमातरम्' का उच्चारण करनेवालों को कोड़े मारने के कारण कुख्यात था। इसलिए उसे मारने की योजना बनने लगी और इसके लिए बम भी बनाए जाने लगे।

१९०७ में चौदह-पंद्रह समर्पित किशोर और नवयुवक क्रांति दीक्षा लेकर तैयार थे। अविनाश भट्टाचार्य और भूपेंद्रनाथ दत्त 'युगांतर' चला रहे थे। शेष बम बनाने व सूचनाएँ एकत्रित करने में लग गए। उल्हासकर दत्त की सहायता से वारींद्र ने मुरारीपुकुर रोड, मानिकतल्ला में अस्त्र-शस्त्र जुटाना आरंभ कर दिया। एक साथी हेमचंद्र दास अपनी जायदाद का एक भाग बेचकर बम बनाना सीखने पेरिस गए। वहाँ से लौटकर वे उल्हासकर दत्त के साथ मिलकर बम बनाने लगे। बँगलाभाषी प्रसिद्ध लेखक उपेंद्र भी तब इनके साथ थे। शिक्षित, नौजवान और खाते पीते घर के इन सभी क्रांतिकारियों का उद्देश्य अन्यायी शासक किंग्सफोर्ड को मारना था ताकि आगे कोई शासक भारतीयों पर इस तरह जुल्म न कर सके कि 'वंदेमातरम्' कहने पर ही पंद्रह बेंत की सजा दी जाए।

कलकत्ता के मानिकतल्ला में वारींद्र घोष का क्रांतिकारी दल साढ़े सत्रह वर्षीय उल्हासकर दत्त के निर्देशन में बम बना रहा था। उन्हें 'युगांतर', 'संध्या', 'वंदेमातरम्' पत्रों पर रोक लगाने और उनके संपादकों को कड़ी सजाएँ देने का बदला लेना था। पंद्रह वर्षीय बालक सुशीलकुमार सेन को, निरपराध जनता पर

लाठी चार्ज रोकने के जुर्म मे बेता से बुरी तरह पीटनेवाले जुल्मी शासक किंग्सफोर्ड को मारने की योजना बन चुकी थी। इसके लिए एक मोटी पुस्तक मे रखकर किंग्सफोर्ड के पास बम भेजा भी गया था; पर पुस्तक स्वयं न खोलने के कारण वह बच गया था। फिर खतरा भाँप, उसे कलकत्ता से मुजफ्फरपुर (बिहार) स्थानांतरित कर दिया गया; तब उसे वहाँ जाकर मारने का जिम्मा खुदीराम बोस व प्रफुल्ल चाकी ने लिया था। लेकिन उस प्रयत्न में भी मजिस्ट्रेट बच गया था और गलती मे बग्घी में आ रही दो अंग्रेज महिलाएँ मारी गई थीं। फिर भी पकड़े जाने पर दोनो नवयुवकों को शहादत देनी पड़ी थी और दमन कार्यवाही बढ़ा दी गई थी। फलस्वरूप गुलामी के विरुद्ध लिखने पर लोकमान्य तिलक को इस कांड का समर्थक मान छह वर्ष का कारावास और देशनिकाला तथा अलीपुर बम केस के क्रांतिकारियों पर अत्याचार—ये दो मुख्य परिणाम सामने आए।

इस धर-पकड़ के बाद क्रांतिकारियों के प्रमुख नेता श्री अरविंद को तो चित्तरंजनदास की कुशल पैरवी बचा ले गई, लेकिन वारींद्र घोष और अन्य साथियो को सजाएँ हो गईं। २ मई, १९०८ को मुरारीपुकुर रोड, मानिकतल्ला सहित चार स्थानों पर कलकत्ता में तथा देवघर पर छापा मारकर कुल इकतालीस लोगो को पकड़ लिया गया था; क्योंकि इसके पूर्व फरवरी १९०८ में बम का परीक्षण करते प्रफुल्लचंद्र चक्रवर्ती दिवंगत हो गए थे। ३० अप्रैल, १९०८ को मुजफ्फरपुर मे बग्घी पर बम फेंका गया था और खुदीराम व प्रफुल्ल चाकी फरार हो गए थे; तब तलाशियों की व धर-पकड़ की कार्यवाही तेज हो गई थी। गिरफ्तार इकतालीस लोगों में से अड़तीस पर मुकदमा चलाया गया। यही 'अलीपुर बम केस' कहलाता है, जिसमें श्री अरविंद व वारींद्र घोष सहित अड़तीस लोगों पर मुकदमा चला था। वारींद्र ने अदालत में बयान देकर बम बनाने का उद्देश्य स्पष्ट किया और जरूरी जानकारियाँ भी दीं कि जनता ऐसे शासन से मुक्ति चाहती है, इसलिए हमने यह किया। यह केस जब सेशन में चल रहा था, नरेन गुसाई नामक अभियुक्त मुखबिर बन गया। यह मुखबिर अदालत में बयान देने से पहले कन्हाई और सत्येंद्र नामक दो नवयुवकों द्वारा अस्पताल के भीतर पुलिस सुरक्षा में भी मारा गया और मारनेवाले दोनों क्रांतिवीर विश्वासघात का बदला लेकर फाँसी चढ़ गए। शेष बाहर बचे फरार नवयुवकों ने भी बदले में बहुत कुछ कर दिखाया।

खुदीराम को पकड़नेवाले पुलिस इंस्पेक्टर का सिर काटकर कलकत्ता मे ब्रिटिश अधिकारियों को भेज दिया गया। सरकारी वकील आशुतोष विश्वास को अरविंद के शिष्य (जो एक विकलांग व अनाथ किशोर था) चारुचंद्र बसु ने

अदालत परिसर में ही १० फरवरी, १९०९ को गोली मार दी और फाँसी चढ़ गया। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट शमसुल आलम को हाई कोर्ट में बाघा जतीन दल के वीरेंद्र नाथ दत्त ने २४ जनवरी, १९१० को मार दिया और यह नवयुवक भी अपना काम करके फाँसी पर झूल गया। इस बीच १३ नवंबर, १९०९ को अहमदाबाद में वायसराय मिंटो पर बम फेंका गया; पर वायसराय बच गया। इस मामले में नारायण दामोदर सावरकर को आजीवन कारावास मिला। उधर 'नासिक षड्यंत्र केस' में वीर विनायक सावरकर के बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर को ९ जून, १९०९ को आजीवन कालापानी की सजा देनेवाले नासिक के अंग्रेज कलेक्टर जैक्सन को एक उत्सव में किशोर अनंत लक्ष्मण कान्हरे ने छह गोलियाँ मारकर वहीं ढेर कर दिया था। इस सिलसिले में ९ अप्रैल, १९१० को कान्हरे और उसके दो साथियों—कृष्ण गोपाल कर्वे और विनायक नारायण देशपांडे को थाना जेल में फाँसी दे दी गई थी। इस केस में अन्य सत्ताईस लोगों को भी लंबी सजाएँ हुईं।

शारीरिक व शस्त्र प्रशिक्षण के लिए गुप्त समितियाँ, धार्मिक राष्ट्रीयता के राजनीतिक प्रशिक्षण के लिए आश्रम चलाने और जन-चेतना के लिए 'युगांतर' निकालनेवाले वारींद्र घोष और उनके साथी उल्हासकर दत्त को पहले फाँसी की ही सजा सुनाई गई थी; पर हाई कोर्ट में अपील के बाद इसे आजीवन काला पानी के दड में बदल दिया गया था। उपेंद्र व कई अन्य साथियों को भी आजीवन काला पानी की सजा हुई। इन लोगों को वहाँ कोल्हू में बैल की जगह जुतना पड़ता था और अनेक अमानुषिक यंत्रणाएँ झेलनी पड़ती थीं। परिणामस्वरूप इंदुभूषण ने आत्महत्या कर ली। किशोरवय के अशोक कुमार नंदी भी जेल में मृत पाए गए। उल्हासकर दत्त, वारींद्र और उपेंद्र बारह वर्ष बाद छूटकर आए। कलकत्ता आकर उपेंद्र लेखन में लग गए। वारींद्र ने चित्तरंजन दास की मासिक पत्रिका 'नारायण' का भार सँभाल लिया। उल्हासकर दत्त ने 'जेल की गाथा' में जेल-यातनाओं का मार्मिक वर्णन किया।

पर यह सिलसिला आगे रुका नहीं। आनेवाले क्रांतिकारियों ने इनकी जगह ली और जीवन की आहुतियाँ देकर भी अत्याचारों का बदला लिया। (वारींद्र घोष दल के कुछ किशोर साथियों, जिनका मुख्य 'एक्शनों' में हाथ रहा और जिन्हें उस काल में सभ्य कहे जानेवाले अंग्रेजों के राज में अल्पवय में भी फाँसियाँ दी गईं, की कहानियाँ आगे अलग से भी दी जा रही हैं।)

□

अद्भुत कारनामा, अद्भुत शहादत!

सुशीलकुमार सेन
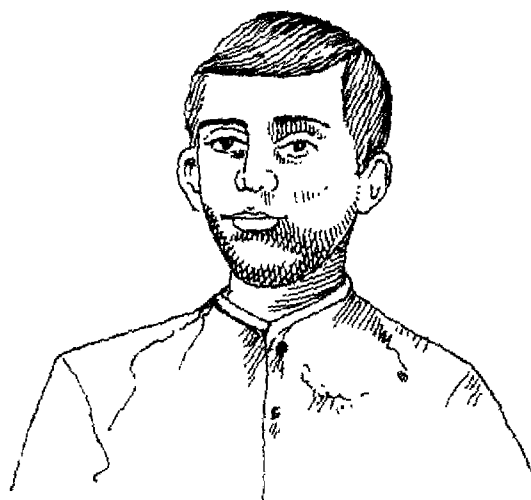
सुशीलकुमार सेन

महात्मा गांधी के भारतीय क्षितिज पर उदित होने से पूर्व १९०९-१९१५ की अवधि के बीच क्रांतिकारी युवकों ने सर्वाधिक कुरबानियाँ दी थीं। हँसते हुए गोलियों को सीने पर झेला था और फाँसी चढ़े थे। १९०५ में अंग्रेजी सरकार की 'बंग-भंग' की साजिश के साथ ही विरोध और विद्रोह का यह सिलसिला शुरू हो गया था। सरकार ने विरोध को कुचलने के लिए दमन का रास्ता अपनाया, बदले में

विरोध और बढ़ गया। साथ ही सख्ती भी बढ़ गई। यहाँ तक कि 'वंदेमातरम्' शब्द का उच्चारण करनेवाला भी दंडित होने लगा। कलकत्ता का चीफ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड इस मामले में इसीलिए बदनाम हुआ कि उसने 'युगांतर', 'संध्या' 'वंदेमातरम्' आदि बंगाल के सभी अच्छे पत्रों पर रोक लगा दी थी। उनके संपादकों को कठोर सजाएँ दी थीं और वह 'वंदेमातरम्' कहनेवालों को भी दस से तीस बेंतों तक की सजा सुनाता था। इसका बदला आगे चलकर खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने लिया।

एक दिन कलकत्ता के नेशनल स्कूल का पंद्रह वर्षीय विद्यार्थी सुशीलकुमार सेन लाल बाजार की कचहरी के सामने से लोगों को भागते हुए देखकर ठिठक गया। उत्सुकतावश उसने कारण जानना चाहा। देखा, सामने एक भारी भरकम शरीरवाला अंग्रेज सारजेंट निहत्थी भीड़ पर अकारण डंडे बरसा रहा था। उस सारजेंट का अफसर किंग्सफोर्ड ही था, जिसे लोग घृणावश 'कसाई काजी' कहते थे।

पिटाई का यह दृश्य देख सुशील सेन अपने आपको रोक न सका। उसने आगे बढ़कर सारजेंट का डंडा पकड़ लिया। सारजेंट गुस्से से भड़क उठा। उसने डंडा खींचकर सुशील को मारना चाहा। पर सुशील ने न सिर्फ अपने को बचा लिया, बल्कि उसके हाथ से डंडा झपटकर दो तीन डंडे उसे ही जमा दिए। तब तक दूसरे पुलिसवाले आ गए। सुशीलकुमार गिरफ्तार कर लिया गया। कसूर था सारजेंट का, लेकिन मुकदमा दायर किया गया सुशीलकुमार पर। उसे कसाई काजी के पास ले जाया गया, जिसने दस बेंतों की सजा सुना दी।

यह घटना २६ अगस्त, १९०७ को घटी। सुशीलकुमार को टिकटिकी पर बाँधा गया और दस बेंतों की सजा दी गई। सुशीलकुमार बिना हिले डुले टिकटिकी पर टँगा रहा और हर बेंत की मार पर 'वंदेमातरम्' बोलता रहा। इससे चिढ़कर उसकी पीठ पर और जोर से बेंत मारा जाता और सुशीलकुमार और भी अधिक जोर से 'वंदेमातरम्' बोलता। सजा बढ़ाकर पंद्रह बेंत कर दी गई। अब तक उसकी पीठ की खाल छिलकर लटक नहीं गई और नीचे की मिट्टी खून से लाल नहीं हो गई, सुशीलकुमार इसी तरह 'वंदेमातरम्' का जयघोष करता रहा। बाद में सुशीलकुमार ने अपने दोस्तों को बताया, उसका हिलना-डुलना या चुप रहना अपनी कायरता का परिचय देना और भारत माता का उपहास करना होता।

सुशीलकुमार की मार का बदला लेने का निर्णय लिया गया। युवकों के नेता अरविंद कुमार घोष ने साथियों से कहा, "अब इस कसाई काजी को और बरदाश्त नहीं किया जाएगा। इसे खत्म करना ही होगा।" योजना बनने लगी। पहले सुशीलकुमार

ने ही एक मोटी पुस्तक में रखकर उसके पास बम भेजा पर पैकेट एक कर्मचारी ने खोला, किंग्सफोर्ड बच गया। खुफिया विभाग को इस साजिश की भनक लग गई और सरकार ने तुरंत किंग्सफोर्ड (कसाई काजी) को बिहार के मुजफ्फरपुर में जिला जज बनाकर भेज दिया। लेकिन मुजफ्फरपुर में भी उसे कौन छोड़ने वाला था। सुशीलकुमार का बदला लेने के लिए जिन दो किशोरों ने अपने नेता अरविंद कुमार घोष को अपने नाम दिए, वे थे—खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी, जिन्हें बाद में फाँसी पर चढ़ना पड़ा था।

आगे चलकर सुशीलकुमार सेन ने भी अपने प्राण जिस तरह भारत माता को अर्पित किए, वह कहानी अपने आपमें अद्वितीय है। अप्रैल १९१५ की एक रात उन्होंने अपने कुछ सहयोगियों के साथ नदिया जिले के परागपुर गाँव की पुलिस चौकी पर आक्रमण किया। वहाँ का थानेदार गाँववालों पर अत्याचार करता था। अतः वह उसके अत्याचारों से गाँववालों को मुक्ति दिलाना चाहते थे।

सुशीलकुमार सेन ने तो गाँववालों के हित में यह कदम उठाया था, किंतु जैसे ही क्रांतिकारी हमला हुआ, पुलिसवालों ने चतुराई दिखाते हुए डाकुओं के आक्रमण का शोर मचा दिया। गाँववाले भी बहकावे में आ गए। उन्होंने पुलिस का साथ दिया और सुशीलकुमार का पीछा किया। स्थिति भाँपकर सुशीलकुमार को अपने सहयोगियों के साथ भागना पड़ा। दुर्भाग्यवश भागते हुए सुशीलकुमार को किसी पुलिसवाले की गोली लग गई और वह गिर पड़े।

साथियों ने सुशीलकुमार को उठाया, लेकिन उन्हें लेकर भागने में कठिनाई होने लगी। सुशीलकुमार ने उन्हें ऐसा करने से रोका कि अगर वे उनके जख्मी शरीर या लाश को ढोते रहे तो तेज नहीं भाग सकेंगे और पकड़े जाएँगे। इसलिए उन्होंने अपने सहयोगियों को सुझाव दिया कि वैसे भी जहाँ गोली लगी है, उससे वह बचेंगे नहीं। बेहतर होगा, वे उनका सिर काटकर यहाँ से भाग लें और धड़ यहाँ छोड़ दें। साथियों ने ऐसा क्रूर कर्म करने से इनकार किया तो सुशीलकुमार ने उन्हें डाँट लगाई—"क्यों मेरी दुर्गति कराते हो? जैसे कह रहा हूँ वैसा करो।" साथियों को विवश होकर वैसा ही करना पड़ा। पुलिस को सुशीलकुमार सेन का सिर्फ धड़ मिला, सिर नहीं।

ऐसी अद्भुत शहादत देनेवाले सुशीलकुमार सेन का कार्य फाँसी का तख्ता चूमनेवाले क्रांतिकारियों से इक्कीस ही ठहरता है, उन्नीस नहीं। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में यह अद्वितीय शहादत स्वर्णाक्षरों में दर्ज है, रहेगी।

□

पचास तक गिनती ऐसे पूरी की गई

जितेन मुखर्जी

कलकत्ता का गोरा बाजार। गाँव का एक सीधा-सादा किशोर कलकत्ता घूमने आया था। हाथ में देहाती डंडा लिये, दोनों हाथों में उसे सिर के पीछे पकड़े हुए अपनी अल्हड़ मस्ती में झूमता झामता वह बाजारों की सैर करता गोरा बाजार भी आ पहुँचा। पर वहाँ एक अजीब दृश्य देख वह ठिठक गया। यह क्या? एक अंग्रेज पुलिस अफसर वहाँ से गुजरनेवाले हर भारतीय की पीठ पर डंडे से एक वार करता और गिनता, एक''चार''आठ''अट्ठाईस''अड़तीस। ऐसे ही गिनते हुए वह हर आदमी को आगे ठेलता जा रहा था।

उस ग्रामीण किशोर ने एक ओर होकर पास से गुजरते एक राहगीर से पूछा ''क्यों भाई, इन लोगों ने क्या किया है? यह पुलिसवाला इन्हें डंडे मारकर क्यों आगे ठेल रहा है?''

राहगीर ने उसे बताया, ''तुम शायद यहाँ पहली बार आए हो, इसलिए नहीं जानते। यह गोरा बाजार है। यहाँ से हर कोई नहीं निकल सकता। जो निकलता है, उसे डंडा मारकर ऐसे ही गिनती की जाती है कि दिन भर में इधर कितने लोग आए? यहाँ डंडा पड़ेगा, आगे उससे परिचय पत्र भी माँगा जाएगा और उसकी जेब से परिचय पत्र न मिलने पर उसे पकड़ लिया जाएगा। शिनाख्त पूरी हो जाने पर कुछ जुर्माना लगाकर छोड़ देंगे। शक होने पर पकड़कर अंदर कर देंगे, जब तक कोई उसकी पहचान बताकर या अमानत देकर उसे छुड़ा न ले जाए। तुम भी अजनबी लग रहे हो। तुम्हारे पास परिचय पत्र नहीं होगा। यहाँ से गुजरने पर डंडा तो खाओगे ही, ख्वाहमख्वाह पकड़कर अंदर भी किए जा सकते हो। इसलिए कदम पीछे लौटा लो, किसी और रास्ते से निकल लो। यह बाजार तुम्हारे देखने के लिए नहीं है।''

तब तक उधर गिनती चौवालीस तक पहुँच चुकी थी। किशोर ने फिर पूछा, "लेकिन लोग पिट क्यों रहे हैं? विरोध क्यों नहीं कर रहे?"

"भैया, बहस मत करो। यहाँ गिनती का यही तरीका है। यहाँ से मत निकलो, नहीं तो पिटो और गिनती में शामिल हो जाओ।"

"हुँह! यह कैसा तरीका है? मैं देखता हूँ...।" और वह तुरंत आगे बढ़ गया। अफसर की गिनती उनचास तक हो चुकी थी। जैसे ही किशोर आगे बढ़ा, अंग्रेज अफसर ने डंडा ऊपर उठाया, किशोर ने झपटकर डंडा उसके हाथ से छीन लिया और 'पचास' कहकर तुरंत डंडा अफसर के सिर पर दे मारा।

इस अप्रत्याशित घटना से अंग्रेज अफसर हक्का-बक्का रह गया। वह अपने सिर पर हाथ फेर चोट सहला ही रहा था कि गुस्से से भरा ग्रामीण किशोर बोला, "जाओ भाई, अब क्या देख रहे हो? तुम्हारी गिनती पूरी हो चुकी है। आगे अब कभी भूलकर भी इस तरह गिनती करके निर्दोषों को मत सताना, वरना मैं देहात से अपने सभी साथियों को बुलाकर ले आऊँगा, जिनके अनगिनत डंडों की मार तुम झेल नहीं पाओगे।" फिर जब तक गोरा बाजार से उस अफसर के और साथी वहाँ आते, किशोर यह जा और वह जा। अब उसे अपने कदम पीछे लौटाने में कोई ऐतराज न था। अफसर को सबक सिखाया जा चुका था। अब वह जेल जाने का जोखिम क्यों उठाए!

उस जुल्मी अंग्रेज अफसर पर उस दिन डंडे की मार का और उस देहाती लड़के की बातों का इतना आतंक छा गया कि तब तो वह गिनती छोड़ वहाँ से चुपचाप सिर झुकाए चला ही गया। आगे भी उसने निर्दोष भारतीय नागरिकों पर डंडे बरसाना छोड़ दिया—'कहीं वह देहाती अपने लाठीधारी अनेक साथियों के साथ आ गया तो उनकी खैर नहीं। यहाँ तैनात सभी लोगों को मार पड़ेगी ही, ऊपर रिपोर्ट जाने पर हमारा न जाने क्या हाल होगा!' इसका मतलब यह था कि ऊपर से ऐसा कोई ऑर्डर न था, स्थानीय अफसर ही मनमानी कर रहे थे। इस घटना के बाद आम लोगों के वहाँ से निकलने के लिए बगल से एक अतिरिक्त छोटा रास्ता बना दिया गया था।

यह सब इसलिए भी हुआ कि उसके घटनास्थल से पीछे लौटते ही जब उसके साहसी कारनामे की खबर लोगों को लगी तो उससे प्रभावित व्यक्तियो ने उसे घेर लिया और लगे पूछताछ करने। तब उसने उन्हें खूब फटकार लगाई थी— "इन लोगों की हम पर जुल्म ढाने की इतनी हिम्मत तुम्हारी बुजदिली से ही तो बढ़ती है! अगर तुम बेकसूर होकर भी इनके हाथों से इस तरह पिटते रहोगे तो याद

रखो यह देश कभी आजाद नहीं होगा। इनके [illegible]
और डटकर मुकाबला करो।" और इसके बाद [illegible]
निकलने लगे थे। कुछ समय बाद [illegible] निकाल दिया गया और [illegible] ने राहत की साँस ली।

जुल्म के खिलाफ अड़ने और जुल्मी अफसर को सबक सिखानेवाला यह किशोर था—जितेन मुखर्जी, जिसने आगे चलकर स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने प्राण न्योछावर किए। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जितेन मुखर्जी नाम के दो प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी हुए हैं—एक यह किशोर और दूसरे, जो बाघा जतीन कहलाए। दोनों ही क्रांतिवीर थे और क्रांति गतिविधियों में भाग लेते शहीद हुए थे।

यह देहाती किशोर, जिसने मात्र चौदह साल की उम्र में [illegible] के जुल्मी अंग्रेज अफसर को सबक सिखाया था, इसके बाद क्रांति गतिविधियों में [illegible] गया और फिर १९१५ में मात्र अठारह साल की उम्र में शहीद हो गया।

□

कुछ कर गुजरने की तमन्ना में शहीद

खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी

खुदीराम बोस
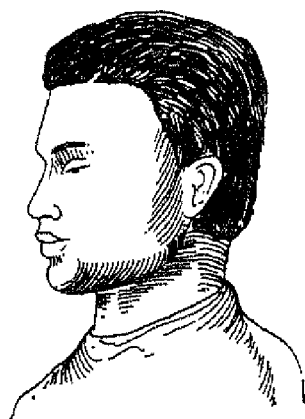
प्रफुल्ल चाकी

बंगाल में किंग्सफोर्ड नाम का एक प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट था। स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं को कड़ी सजाएँ देने के लिए कुख्यात इस मजिस्ट्रेट ने 'युगांतर', 'वंदेमातरम्', 'संध्या' आदि अखबारों के संपादकों पर भी बहुत जुल्म ढाए थे। कोई भी राजनीतिक मामला इसकी अदालत से छूटता नहीं था। इसलिए देशभक्त जनता व स्वतंत्रता सैनिकों में इसके प्रति बहुत रोष उमड़ रहा था। कलकत्ता की 'गुप्त क्रांतिकारी समिति' ने इसे खत्म करने के उद्देश्य से पार्सल के द्वारा एक पुस्तक में छिपाकर बम भेजा; पर पार्सल किसी कर्मचारी द्वारा खोले जाने के कारण किंग्सफोर्ड बच गया। इसके बाद सुरक्षा की दृष्टि से उसका तबादला मुजफ्फरपुर (बिहार) कर दिया गया। कलकत्ता के क्रांतिकारियों के लिए कडी सुरक्षा के बीच मुजफ्फरपुर जाकर उसे मारना आसान नहीं था। फिर भी

इस कठिन काम के लिए दो किशोर तैयार हो गए मिदनापुर के खुदीराम बोस और रंगपुर के प्रफुल्ल चाकी।

१९०५ के 'बंग-भंग आंदोलन' के बाद १९०७-०८ का वह जमाना, जब 'वंदेमातरम्' कहने पर भी कोड़ों की मार पड़ती थी. इन दो किशोरों का साहस देखिए, यह जानते हुए भी कि इस जोखिम भरे काम में पकड़े जाने पर सजाए मौत या फाँसी से कम कुछ मिलने वाला नहीं है, वे ऐसे जुल्मी ब्रिटिश अधिकारियों से मातृभूमि को मुक्त कराने के लिए खुशी-खुशी तैयार हो गए। नेता सत्येंद्रनाथ ने दोनो को एक-एक शक्तिशाली बम दिया। साथ ही, खुदीराम को दो पिस्तौलें और प्रफुल्ल को एक पिस्तौल देकर, खुदीराम को यह काम सौंपा और प्रफुल्ल को उसकी सहायता के लिए साथ भेजा।

आवश्यक निर्देश लेकर दोनों मुजफ्फरपुर पहुँचे और नाम बदलकर एक धर्मशाला में ठहर गए। कुछ दिन उन्होंने किंग्सफोर्ड की गतिविधियों का सूक्ष्म अध्ययन किया और जाना कि किंग्सफोर्ड एक खास समय पर अपनी विक्टोरिया बग्घी में बैठकर यूरोपियन क्लब जाता है। बस उसे मारने के लिए यही समय चुन लिया गया और दोनों जाँबाज किशोर इस काम के लिए तैयार हो गए।

क्लब जाने-आने का एक ही रास्ता था। ३० अप्रैल, १९०८ की संध्या को क्लब से थोड़ी दूर एक पेड़ के नीचे खड़े होकर वे बग्घी के आने का इंतजार करने लगे। आठ बजे के आसपास बग्घी को फाटक से बाहर आता देख खुदीराम ने निशाना साध लिया। बग्घी के पास से गुजरते ही उसपर बम फेंक दिया गया। बग्घी टूटकर बिखर गई, फिर बग्घी का बचा हिस्सा आग की लपटों में घिर गया। यह तो बाद में पता चला कि किंग्सफोर्ड उस दिन बग्घी में था ही नहीं। उसके बदले मिसेज कैनेडी और उनकी युवा बेटी मारी गईं। ये दोनों ही उस दिन बग्घी में सवार थीं। पर खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी अपना अभियान सफल जान वहाँ से तुरत भाग निकले। दोनों रेलवे लाइन के साथ दौड़ते हुए आगे जाकर अलग हो गए और अपने बचाव में रात भर चलते-चलते दूसरे नगरों में जा निकले।

खुदीराम रात भर नंगे पैर चलते, चौबीस मील का सफर तय कर सुबह वैनी स्टेशन तक पहुँच चुके थे। थकान और भूख से बेहाल वह एक दूकान से लाई-चना लेने के लिए बेंच पर बैठे। थोड़ा खाने के बाद वह पानी पी रहे थे कि वहाँ उस घटना का जिक्र सुना कि मुजफ्फरपुर में दो मेमें मारी गईं और हत्यारे भाग निकले। खुदीराम को किंग्सफोर्ड के बच जाने और दो निर्दोष महिलाओं के मारे जाने के समाचार से बहुत सदमा पहुँचा। तुरंत उनके मुख से निकला--"क्या

किंग्सफोर्ड नहीं मरा? यह वाक्य सुनकर और किशोर का थकान से पस्त चेहरा देखकर वहा खडे दो सिपाहियो को खुदीराम पर शक हो गया खुदीराम जल्दबाजी मे अपना जूता भी घटनास्थल पर भूल से छोड़ आए थे। मुसाफिर के नंगे पैर देखकर भी सिपाहियों को लगा, हत्यारा यही है।

उन्होंने खुदीराम को पकड़कर पूछा, "तुम्हें कहाँ जाना है?" उत्तर में खुदीराम के मुँह से निकला, "बाँकीपुर।"

"तब तुम वैनी कैसे आ गए? तुम्हें तो मुजफ्फरपुर जाना था?"

जवाब में खुदीराम की जबान लड़खड़ा गई—"बड़ी जोर की प्यास लगी थी, इसलिए।" और यह कहकर वह अपने को सिपाहियों की पकड़ से छुडाने लगे; पर छूट न पाए। उन्हें अपनी जेब से पिस्तौल निकालने का भी मौका नही मिला। सिपाहियों ने तलाशी ली तो उनके पास दो पिस्तौलें मिलीं और रेलवे टाइम टेबल व तीस रुपए। इस तरह खुदीराम पकड़ लिये गए।

उधर प्रफुल्ल चाकी सारी रात चलकर समस्तीपुर पहुँच गए। वहाँ उन्होने कपड़े बदले और मोकामा घाट का टिकट लेकर ट्रेन में सवार हो गए। यहाँ भी उनका दुर्भाग्य उनके पीछे हो लिया। कंपार्टमेंट में नंदलाल बनर्जी नामक एक दरोगा ने प्रफुल्ल पर संदेह की नजर गड़ाकर उनसे दोस्ती कर ली और बातचीत में सदेह पुष्ट होने पर मोकामा घाट स्टेशन पर सिपाहियों को बुलवा उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। पर प्रफुल्ल ने पूरी शक्ति से स्वयं को छुड़ा, प्लेटफॉर्म पर ही सिपाहियों पर गोली चला दी; फिर बच निकलने का उपाय न देख तुरंत अपनी पिस्तौल अपनी ठोड़ी व गरदन के बीच रखकर स्वयं को गोली मार ली। सिपाही जख्मी हो ही चुके थे, बस देखते रह गए और प्रफुल्ल चाकी घटनास्थल पर ही मातृभूमि के लिए शहीद हो गए।

खुदीराम बोस मुजफ्फरपुर लाए गए। पकड़े जाने पर भी वह पूरी तरह शात थे। वैन पर चढ़ते समय उन्होंने 'वंदेमातरम्' का जयघोष किया। अगली २ मई को उन्हें तत्कालीन जिलाधीश वुडमेन की अदालत में पेश किया गया। वहाँ भी उन्होने बेधड़क स्वीकार किया कि दोनों महिलाओं को मारने का उनका कतई इरादा नहीं था। वे दोनों तो किंग्सफोर्ड को मारने गए थे—"ऐसे जुल्मी शासक को मारना हमारा धर्म था। अब भी हमारे साथी उन्हें जिंदा नहीं छोड़ेंगे, जब भी मौका मिला, मारेंगे। आप मुझे चाहे फाँसी पर चढ़ा दें, मातृभूमि की रक्षा व मुक्ति के लिए हम मौत को गले लगाने से नहीं डरेंगे।" यह थी उस समय हमारे किशोरों, युवाओ मे सरफरोशी की तमन्ना और उसके लिए कुछ कर गुजरने की ललक!

२ मई से ११ अगस्त की सुबह तक खुदीराम जेल में रहे। साथी क्रांतिकारी बाहर छूट गए थे या मारे गए थे या अन्य जेलों में थे। उनके साथ थीं— मैजिनी, गैरीबाल्डी की जीवनियाँ, रवींद्र साहित्य और मौत की प्रतीक्षा। आजीवन कारावास में सड़ने की अपेक्षा वह फाँसी पर चढ़ना चाहते थे, इसलिए उनकी पैरवी के लिए आगे आए श्री कालीदास बोस की उन्होंने कोई मदद नहीं की। हर बार सीना तान कर गर्व से अपना अपराध स्वीकार करते थे कि उन्हें मातृभूमि की सेवा करने का मौका मिला। इसलिए कुछ महीनों के जेल-प्रवास में उनका वजन भी बढ़ गया था। अंततः उनकी इच्छा पूरी हुई और ११ अगस्त, १९०८ की सुबह उन्हें फाँसी दे दी गई।

३ दिसंबर, १८८९ को जनमे खुदीराम बोस के माता-पिता बचपन में ही चल बसे थे। बड़ी बहन अपरूपा बसु ने उन्हें पाला था, पर क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण दो वर्ष पूर्व बहनोई ने उन्हें घर से निकाल दिया था। तब वह अनेक क्षेत्रों में समाजसेवा कार्य भी करते रहे थे। सत्रह साल की उम्र में वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए थे और उन्नीस वर्ष में कुछ महीने कम की उम्र में फाँसी के तख्ते पर झूल गए थे।

उनकी शवयात्रा में हजारों की भीड़ उमड़ी थी। उनकी चिता की भस्मी को लोगों ने सिर-माथे पर लगाया और तावीजों में मढ़वाया था। उनकी शानदार शहादत पर लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' में जो दो लेख लिखे थे, उसी कारण ब्रिटिश सरकार ने तिलक जैसे अग्रणी नेता को भी छह साल की जेल की सजा देकर बर्मा भेज दिया था। कई महिला संस्थाओं ने उनकी माँ समान बड़ी बहन का सम्मान भी किया था।

भारत के स्वतंत्रता सेनानी शहीदों में खुदीराम बोस का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उनके 'जन्म शताब्दी वर्ष' में भारत सरकार ने खुदीराम बोस स्मृति डाक टिकट भी जारी किया था। आजादी की पचासवीं वर्षगाँठ पर उनको तथा उनके बलिदानी साथी प्रफुल्ल चाकी को नमन। आज 'सारी दुनिया मेरे लिए' गानेवाली नई पीढ़ी के लिए काश, देश की आजादी की बलिवेदी पर शहीद होनेवाले ये किशोर-नवयुवक प्रेरणा की कोई मशाल जला सकें!

☐

जेल-अस्पताल में घुसकर मुखबिर का काम तमाम

कन्हाई और सत्येंद्र
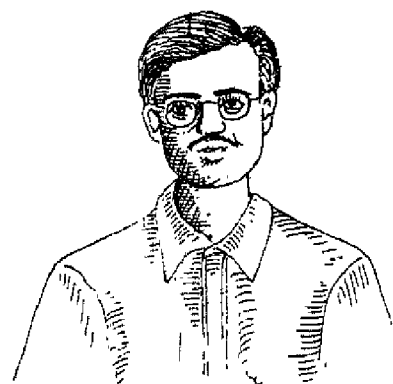
कन्हाई　　　　　　　　सत्येंद्र

बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन के प्रारंभिक काल में 'अलीपुर बम केस' एक बड़ी घटना थी, जिसमें बम बनाने का एक कारखाना पकड़ा गया था। ३४, मुरारीपुकुर रोड में स्थापित इस कारखाने से बहुत से बम, डायनामाइट, चिट्ठियाँ और दस्तावेज पुलिस के हाथ लग गए थे और कागजातों के आधार पर कुल चौतीस क्रांतिकारी गिरफ्तार किए गए थे। इनमें अरविंद घोष के भाई वारींद्र घोष, उल्हासकर दत्त, हेमचंद्र दास, उपेंद्र बनर्जी जैसे बड़े नेता और कन्हाई, सत्येंद्र आदि कई किशोर व नवयुवक क्रांतिकारी भी थे। अरविंद घोष इसी धर-पकड़ के दिनो किसी तरह बचकर फ्रांसीसी बस्ती, पांडिचेरी जा निकले थे। इन्हीं अभियुक्तों में से एक नरेन गुसाईं मुखबिर हो गया था, जिसे सबक सिखाने का जिम्मा दो किशोरो— कन्हाईलाल दत्त और सत्येंद्रनाथ बसु ने लिया था, जिन्हें बाद में फाँसी दी गई।

अलीपुर बम केस के नाम से मशहूर इस घटना के बाद ब्रिटिश अधिकारियों की चौकसी खूब बढ़ गई थी। इसके बावजूद १० फरवरी १९०९ को इस केस का सरकारी वकील अदालत से बाहर निकलते समय दिन दहाड़े मारा गया था। ऐसे में मुखबिर नरेन गुसाईं का मारा जाना निश्चित जानकर उसकी सुरक्षा कड़ी कर दी गई थी। इसी सुरक्षा की दृष्टि से उसे जेल के अस्पताल में रखा गया। जेल अस्पताल के भीतर जाकर उसे मारना बड़ा कठिन काम था; पर उसकी मुखबिरी से नाराज क्रांतिकारी किशोर जान हथेली पर लिये घूमते थे। फिर कन्हाई और सत्येंद्र तो स्वयं जेल में थे। वे हथियार कहाँ से, कैसे प्राप्त करें? अस्पताल में कैसे दाखिल हों? पर राह खोज ली गई। कुछ मददगार साथी भीतर थे, कुछ दूसरे साथी बाहर। मदद दोनों ओर से चाहिए थी, केवल संपर्क का काम कठिन था।

कन्हाई और सत्येंद्र ने बड़ों की सलाह लिये बिना आपस में तय किया। पहले सत्येंद्र जोर-जोर से खाँसता हुआ बीमार बनकर अस्पताल में भरती हुआ। दो दिन बाद कन्हाई ने जोर से पेटदर्द की शिकायत की और वह भी कराहता चिल्लाता अस्पताल पहुँच गया। उसका जोर से कराहने, चिल्लाने का मकसद था कि सत्येंद्र को पता चल जाए कि कन्हाई भीतर आ गया है। अब काम शुरू हो जाना चाहिए।

इधर सत्येंद्र ने नरेन गुसाईं को खबर भिजवाई कि वह अपने साथियों से नाराज है। ऐसी जिंदगी से वह तंग आ गया है और उसका साथी कन्हाई भी। अगर मौका मिले तो हम भी मुखबिर बनकर बचना चाहते हैं। इधर कन्हाई ने पेटदर्द की दवा के रूप में बाहर से तरबूज मँगवाया, जिसके भीतर रखकर उनके एक साथी ने दो पिस्तौलें उसे भेज दीं। जेल के भीतर खाने की कोई चीज बिना जाँचे नहीं आने दी जाती। तो बाहर से साथी ने रिश्वत में अच्छी रकम देकर, भाई की जान बचाने का वास्ता देकर, इसका भी इंतजाम कर लिया। बड़े जोखिम का काम था। कन्हाई वहीं पकड़ा जा सकता था, क्योंकि क्रांतिकारियों पर कड़ी नजर रखने के आदेश थे। पर ये दोनों इस उद्देश्य में सफल हुए।

नरेन को मुखबिर बनने की इच्छा का संदेश सत्येंद्र पहले ही भेज चुका था। अब उसने अपने न बचने की उम्मीद का कुशल अभिनय कर जेल अधिकारी को नरेन से मिला देने की चिरौरी की। नरेन ने भी सत्येंद्र से मिलने की इच्छा जाहिर की कि इस तरह उसे भी मुखबिर बनाया जा सकेगा। ३१ अगस्त को अधिकारी ने नरेन को एक सारजेंट के संरक्षण में सत्येंद्र से मिलने भेज दिया। पहले दोनों दोस्ती से वैसे ही घुल-मिलकर बातें हुईं, फिर गोली की मार के फासले में आते ही सत्येंद्र ने उसपर गोली चला दी। नरेन बाहर की ओर भागा। गोली उसके पैर में लगी, फिर

भी वह भाग निकला तभी वहा छुपे कन्हाई ने उसपर दनादन पाच गोलिया दागकर उसे वहीं ढेर कर दिया। इस तरह क्रांति का दुश्मन, देशद्रोही नरेन अंग्रेजों की निगरानी में, उनके गढ़ में ही मारा गया। अब कन्हाई और सत्येंद्र के वहाँ से बच निकलने की कोई संभावना न थी। ऐसी आशा उन्होंने की भी नहीं थी। वे तो जान हथेली पर रखकर आए ही थे। एक विजयी मुसकान के साथ दोनों ने स्वयं को जेल पुलिस के हवाले कर दिया।

एक सनसनी की तरह सारे बंगाल में खबर फैली और दोनों किशोर नायक बनकर अखबारों की सुर्खियों में छा गए, विशेष रूप से कन्हाई। चूँकि सत्येंद्र का निशाना चूक गया था, इसलिए विजय का सेहरा कन्हाई के सिर बँधा। उन दिनो 'युगांतर', 'संध्या' जैसे पत्रों पर पाबंदियाँ लगी थीं, तब भी सारे अखबार इन सुर्खियों से भरे थे और उनके दफ्तरों में मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं। बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक मोती बाबू ने तो बाद में कन्हाई पर एक पूरी पुस्तक भी लिखी थी।

कन्हाई और सत्येंद्र पर मुकदमा चला और १० नवंबर, १९०८ को उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। मोती बाबू ने लिखा है, फाँसी की सजा सुनने के बाद वह इतना खुश था कि फाँसी लगने तक जेल में कन्हाई का वजन आठ पाउंड बढ़ गया था। उसकी शवयात्रा के साथ भीगी आँखें लिये हजारों लोग थे। चिता की भस्म लेकर माथे पर लगाई जा रही थी और बच्चों के लिए तावीज में मढ़वाई जा रही थी।

कैसा था वह वक्त! किस तरह छोटे बच्चों और किशोरों तक में देश के लिए मर मिटने की होड़ लगी थी। कन्हाई और सत्येंद्र स्कूली बच्चे ही थे, जब वे गुप्त समितियों में क्रांति का प्रशिक्षण ले रहे थे। अठारह-उन्नीस की उम्र में तो वे शहीद भी हो गए। साम्राज्यवादी जहाँ उन्हें आतंकवादी हत्यारे कहते थे, वहीं जनता उन्हें मुक्ति के मसीहा मानकर सिर-आँखों पर लेती थी। तभी तो उनकी शहादत लोरियों और लोकगीतों का विषय बन जाती थी। ऐसे बिखरे साहित्य को प्रकाश मे लाना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

□

प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस

रासबिहारी बोस के किशोर-नवयुवक साथी

रासबिहारी बोस

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व लगभग पंद्रह हजार भारतीय रोजगार हेतु अमेरिका, कनाडा व अन्य यूरोपीय देशों में रह रहे थे, जिन्हें 'डैम हिंदू', 'ब्रिटिश साम्राज्य के कुत्ते', 'काली भेड़ें' आदि अपमानजनक संबोधनों से पुकारकर लांछित किया जाता था। इस प्रकार भारत की गुलामी वहाँ स्वदेश से अधिक असह्य थी। फिर १९०८ में कनाडा में अन्य आनेवाले भारतीयों के प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी और अमेरिका

मे भी ऐसी योजना बनने लगी थी इसी दौरान लदन मे इडिया हाउस बद कर दिया गया तो क्रांतिकारी इधर-उधर बिखर गए और विदेश से देश की आजादी की अलख जगाने लगे।

१९०९ में अमेरिका के सिटिल नगर से 'फ्री हिंदुस्तान' नामक पत्र निकला जो तीन वर्ष बाद ब्रिटिश दबाव से अमेरिकी सरकार ने बंद करवा दिया था। १९०९ मे ही वैंकोवर में 'स्वदेश सेवक हाउस' स्थापित हुआ, पोर्टलैंड में काशीराम और खानखोजे ने 'इंडियन इंडिपेंडेंस लीग' बनाई। मार्च १९१३ में सेंट जॉन में लाला हरदयाल, भाई परमानंद, काशीराम आदि मिले और 'हिंदी एसोसिएशन ऑफ पेसिफिक ईस्ट' संस्था स्थापित कर, सशस्त्र क्रांति द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन का खात्मा कर लोकतंत्रीय सरकार की स्थापना का लक्ष्य रखा गया। इसका मुख्यालय सानफ्रांसिस्को में बनाया गया, जिसे बंगाल के 'युगांतर' पत्र के नाम पर 'युगांतर आश्रम' नाम दिया गया। यहीं से नवंबर १९१३ से 'गदर' नाम का सुप्रसिद्ध पत्र निकाला गया।

यह पत्र हिंदी, मराठी, गुजराती, गुरुमुखी व उर्दू भाषाओं में निकलता था। लाला हरदयाल मुख्य संपादक थे और जगतराम हरियाणवी, खेमचंद, गोपाल सिंह, विष्णु गणेश पिंगले आदि साथी भी इससे जुड़े थे। रघुवरदयाल गुप्त और सत्रह वर्षीय किशोर करतारसिंह सराभा संपादकीय का काम सँभालते थे। 'गदर' पत्र ने इतनी धूम मचाई कि बाद में इस पार्टी का नाम ही 'गदर पार्टी' हो गया। 'वंदेमातरम्' पार्टी का राष्ट्रगान था और 'गदर' में विज्ञापन छपता था—'आवश्यकता है, उत्साही वीर सैनिकों की। उजरत : मौत। इनाम : शहादत। मिशन : आजादी। कार्यक्षेत्र · हिदुस्तान।' पार्टी की बासठ शाखाएँ अमेरिका, कनाडा के विभिन्न नगरों के साथ-साथ शंघाई, हांगकांग, फिजी, पनामा, बैंकॉक, जापान तक में खोली गईं। पार्टी का मुख्य उद्देश्य ब्रिटेन के शत्रु जर्मनी से शस्त्र प्राप्त कर क्रांतिकारियों को देश की आजादी के लिए देने की योजना के साथ, सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, विभिन्न समूहों में भारत जाकर एक बड़ी संगठित क्रांति को कार्यान्वित करना था।

उधर विदेश में भीकाजी कामा, श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर सहित ये लोग सक्रिय थे; इधर भारत में रासबिहारी बोस, शचींद्र सान्याल आदि क्रांति नेताओं के निर्देशन में अनेक साथी तैयार हो रहे थे और करतारसिंह सराभा व विष्णु गणेश पिंगले आदि साथी इस कार्य के लिए विदेश से भारत पहुँच चुके थे। इस सारी पृष्ठभूमि का उद्देश्य क्रांति के एक सूत्रधार और अद्भुत संगठक जाँबाज किशोर करतारसिंह की महत्त्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करना है।

पंज़ाब ने भारत को बहुत से बहादुर सिपाही दिए, क्रांतिवीर भी, जिनमें कामागाटामारू जहाज कांड के शहीद अनेक सरदार क्रांतिवीरों में करतारसिंह सराभा का नाम व स्थान क्रांति संगठक के रूप में अलग से जाना जाता है। कामागाटामारू की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है—हांगकांग के एक ठेकेदार बाबा गुरुदत्त सिंह ने २४ मार्च, १९१४ को हांगकांग से एक जापानी जहाज किराए पर लिया। २३ मई को स्त्री-बच्चों सहित, तीन सौ बहत्तर यात्रियों के साथ जहाज वैंकोवर (कनाडा) पहुँचा। कनाडा सरकार ने यात्रियों को वहाँ न तो उतरने दिया, न राशन ही लेने दिया। इनमें 'गदर पार्टी' के मौलवी बरकतउल्ला, भगवान सिंह, बलवंत सिंह आदि कई लोग थे, जिन्होंने 'गदर' अखबार सभी यात्रियों को पढ़ने के लिए दिया और बताया कि किस तरह अंग्रेज सरकार भारतीयों से रोजी-रोटी, इज्जत—सबकुछ छीन रही है। सामान्य यात्री भी देश की आजादी के लिए लड़ने-मरने को तैयार हो गए। बाबा गुरुदत्त सिंह अदालती कार्यवाही में दो महीने तक न्याय की प्रतीक्षा करने के बाद, फौजी हमले की आशंका से भारत की ओर लौट चले। लौटते समय 'गदर पार्टी' के अध्यक्ष सोहन सिंह भी जहाज में सवार हो लिये।

बहुत कष्ट उठाकर ये सब यात्री कलकत्ता के बजबज बंदरगाह पहुँचे। पर क्रांति की आशंका से अंग्रेजों ने न उन्हें कनाडा में उतरने दिया, न कलकत्ता में। एक स्पेशल ट्रेन में जबरदस्ती भरकर इन असहायों को पंजाब भेज दिया, जहाँ क्रूर गर्वनर ओ' डायर इनसे निबट सकें। पहले से ही यातनाएँ झेलते, वैंकोवर में भूखे पेट लौटे, परेशान हाल यात्रियों ने जब जबरन लाहौर जानेवाली ट्रेन में बैठाए जाने का विरोध किया, तब उन्हें गोलियों से भून दिया गया। शेष पंजाब जाकर, कोर्ट के नाटक के बाद, लंबी या आजीवन जेल-सजाएँ भुगतने के लिए विवश हुए। इसी दौरान आपाधापी में बजबज से बाबा गुरुदत्त सिंह, सोहन सिंह भकना आदि कई प्रसिद्ध क्रांतिकारी भागकर फरार हो गए। कुछ जापान भाग निकले।

कामागाटामारू जहाज के यात्रियों पर इस अत्याचार ने आग में घी का काम किया और इसके बाद 'तोशामारू', 'क्वाचीमारू' आदि जहाजों से अनेक क्रांतिकारी भारत आए। स्वयं अंग्रेजी सरकार ने स्वीकार किया कि करीब आठ हजार प्रवासी भारत आए, जिनमें से पंद्रह सौ चौंतीस गिरफ्तार हुए, अठारह बजबज में मारे गए, तीन सौ गिरफ्तार करके पंजाब भेजे गए, जिनमें से अनेक को आजीवन कारावास का दंड मिला। इसके बाद तितर-बितर क्रांतिकारी आपस में तालमेल कर संगठित क्रांति की पक्की योजना बनाने में जुट गए थे। यहीं से 'गदर' के सबसे कम उम्र

शचींद्रनाथ सान्याल

विष्णु गणेश पिंगले

सपादक करतारसिंह की विशेष भूमिका सामने आती है।

देश-विदेश में भारत की आजादी के लिए 'गदर' या 'क्रांति' करने के लिए 'गदर पार्टी' ने २१ फरवरी का दिन निश्चित कर लिया था। भारत में भी पार्टी की शाखाएँ थीं। सबसे ज्यादा सिख क्रांतिकारी कामागाटामारू जहाज कांड में मारे गए थे या पकड़कर जेलों में लंबी सजाएँ काटने और आजीवन सजाएँ देकर कालापानी भेज दिए गए थे। अत: लाहौर ही क्रांति का गढ़ बना, जिसे 'प्रथम लाहौर षड्यत्र केस' के नाम से जाना जाता है। यहाँ का संगठन रासबिहारी बोस और करतारसिंह सराभा को सौंपा गया था। करतारसिंह इसके लिए कामागाटामारू जहाज से अलग छिपकर भारत पहुँच गए थे। इसी तरह विष्णु गणेश पिंगले व कुछ अन्य साथी भी छिपकर भारत आए थे। शेष लोग भारत से थे।

फिराजपुर केंद्र लाहौर के साथ शामिल कर लिया गया था। जबलपुर केंद्र नलिनीमोहन मुखोपाध्याय को दिया गया; जबकि अजमेर कुँवर प्रतापसिंह बारहठ को, बनारस शचींद्र सान्याल को, गुवाहाटी नरेंद्रनाथ बंद्योपाध्याय को, मेरठ पिगले को, रावलपिंडी निधानसिंह को। सभी जगह सैनिक छावनियों और जनता से संपर्क कर लिया गया था। पर दल के ही एक व्यक्ति कृपालसिंह ने विश्वासघात कर अपने साथियों को पकड़वा दिया और क्रांति की विफलता के साथ इन अग्रणी क्रातिकारियों को घोर यातनाएँ झेलनी पड़ीं या शहीद होना पड़ा।

इस 'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' व पूरक केस में उन्नीस देशभक्त फाँसी चढे, चौरानबे को उनकी संपत्ति छीनकर आजीवन कालापानी की या लंबी जेल-सजाएँ दी गई। रासबिहारी बोस पर एक लाख का इनाम था, पर वे फरार हो गए।

विष्णु गणेश पिंगले मेरठ में बमों की पेटी के साथ पकड़े गए थे। उन्हें १७ नवंबर १९१५ को लाहौर में फाँसी दे दी गई। प्रतापसिंह बारहठ बरेली जेल में ब्रिटिश जुल्म से शहीद हो गए। शचींद्र सान्याल को आजीवन कालापानी की सजा मिली। अनेक साथियों ने जेल की यातनाओं से वहीं दम तोड़ दिया, तो कुछ पागल हो गए। बाघा जतीन व उनके साथी जर्मनी से शस्त्र लेकर आनेवाले नौशामारू जहाज की प्रतीक्षा करते पुलिस मुठभेड़ में मारे गए। करतारसिंह सराभा भी रासबिहारी बोस की तरह निकल भागे थे; पर अफगानिस्तान न जाकर, साथियों का खयाल कर रास्ते से लौट आए और पकड़े गए। उनकी कम उम्र की भी परवाह न कर उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।

करतारसिंह सराभा की कहानी इतनी साहस-जोखिम भरी और रोमांचक है कि इस किशोर क्रांतिकारी नेता पर आगे अलग से भी लिखा जा रहा है।

□

'गदर' के किशोर संपादक

करतारसिंह सराभा
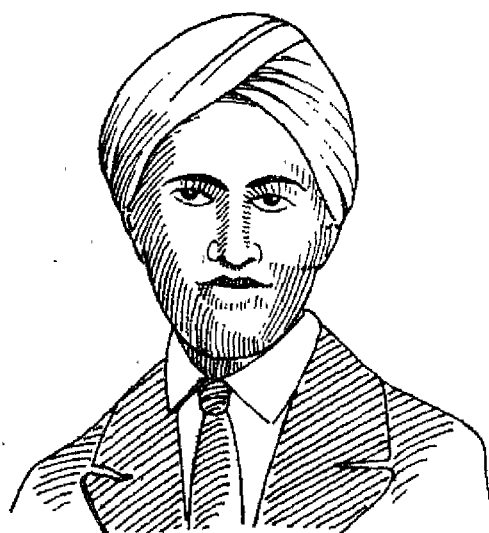
करतारसिंह सराभा

क्रांति के प्रथम दौर में २१ फरवरी, १९१५ का दिन सारे भारत में क्रांति के लिए नियत था। करतारसिंह सराभा इसके पहले ही लाहौर छावनी की मैगजीन पर हमला करने वाले थे। एक सिपाही को उन्होंने अपने साथ मिला लिया था। सिपाही ने वादा किया था कि वह समय पर मैगजीन की चाबी उन्हें दे देगा। किंतु जब करतारसिंह वहाँ अपने दल-बल सहित पहुँचे तो मालूम हुआ कि उस सिपाही की

ड्यूटी एक दिन पहले बदल गई थी। निराश होकर वह अपने साथियों के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि छावनियों का भ्रमण पर निकल पड़े। विद्रोह के लिए निश्चित तिथि २१ फरवरी के पहले छावनियों में कमेटियाँ बन गई थीं कि वहाँ फौजें विद्रोह में भाग लेंगी। लेकिन दल के ही एक व्यक्ति कृपालसिंह ने सारी योजना सरकार के सामने रख दी। इस तरह समय से पूर्व भंडाफोड़ हो जाने से विद्रोह तो विफल हुआ ही, सरकार का दमन चक्र भी जोर से चल पड़ा।

चारों ओर धर-पकड़ के बीच करतारसिंह दो साथियों सहित भागकर ब्रिटिश भारत के बाहर पहुँच गए। वहाँ वे सुरक्षित थे। पर करतारसिंह उस मिट्टी के नहीं बने थे कि छिपकर रहते। भावुक थे ही, सोचा, इस तरह साथियों को पीछे छोड़कर भागना उचित नहीं। साथ लड़े हैं, साथ मरेंगे। बस वे पीछे घूम लिये और पकड़ लिये गए। जेल में भी वे चिर विद्रोही चुप नहीं रहे। साथियों को जेल से भाग चलने के लिए राजी किया कि बाहर निकलकर लाहौर छावनी की मैगजीन पर कब्जा कर लिया जाए। पर उनकी यह योजना भी सफल नहीं रही, भेद खुल गया। करतारसिंह की सुराही के नीचे की जमीन से औजार बरामद हो गए, और साथियों को फिर गिरफ्तार कर लिया गया।

करतारसिंह का जन्म सन् १८९६ में पंजाब के लुधियाना जिले के 'सराभा' गाँव में हुआ था। पिता सरदार मंगलसिंह उन्हें बचपन में ही छोड़कर स्वर्गवासी हो गए थे। दादा ने उनका पालन-पोषण किया। लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में उन्हें भरती कराया गया। किंतु पढ़ाई-लिखाई में उनका मन नहीं लगता था। स्वभाव से ऊधमी, खेलों में आगे करतारसिंह ने जब 'एंट्रेंस' पास किया, उनकी रुचि राजनीतिक साहित्य की ओर मुड़ गई। उन दिनों पंजाब के बहुत से सरदार अमेरिका कनाडा में बसे थे। दादा को मनाकर करतारसिंह भी अमेरिका चले गए और 'गदर पार्टी' के सदस्य हो गए। अमेरिका में उन्होंने देखा कि पश्चिम के लोग यूँ तो हर समय आजादी, मातृत्व भावना आदि की बात करते हैं, किंतु भारतीयों से घृणा करते है। इसका कारण भारतीयों की गुलामी ही है, जिससे आजाद होने के लिए उन्हें अपनी जान की बाजी लगानी है। 'गदर' के संपादक मंडल के सबसे कम उम्र के सदस्य करतारसिंह एक उत्साही व कर्मठ कार्यकर्ता थे। वे खुद ही कंपोज करते, मशीन चलाते, अखबार छापते और बेचते थे। बराबर हँसते, गीत गाते, अखबार के लिए मेहनत करते; जैसे कभी थकते ही न थे।

'गदर पार्टी' का आदर्श था—आजादी और बराबरी। इसमें किसी धर्म,

जाति सप्रदाय आदि का भेदभाव नहीं था कोई भी भारतीय इस दल का सदस्य हो सकता था। लाला हरदयाल 'गदर पार्टी' के अखबार 'गदर' के मुख्य संपादक थे, जिसका पहला अंक नवंबर १९१३ में निकला था। लाला हरदयाल पर अमेरिकी सरकार के मुकदमे से कनाडा निवासी देशभक्त सरदारों में असंतोष की आग भड़की। सरदार मेवासिंह, भागसिंह, वतनसिंह आदि के मुकदमों और शहादतों के बाद २३ जुलाई, १९१४ को 'क़ामागाटामारू' जहाज से पंजाब के सरदार क्रांतिकारियो की वापसी हिंदुस्तान यात्रा शुरू हुई। इस बीच यूरोप में लड़ाई छिड़ गई थी। वैंकोवर से रवाना हुआ जहाज जब योकोहामा पहुँचा तो प्रसिद्ध क्रांतिकारी प परमानंद भी इन्हीं यात्रियों में शामिल हो गए, जिन्होंने बाद में तेईस साल की लबी सजा कालापानी में काटी थी। योकोहामा निवासी सोहनसिंह भी इन यात्रियों से आ मिले थे।

उसी समय करतारसिंह सराभा भी संदेश लेकर योकोहामा पहुँच गए कि महायुद्ध शुरू होने के कारण, जब ब्रिटिश सरकार विपत्ति में फँसी है इसलिए 'गदर पार्टी' ने यह फैसला किया है कि तमाम प्रवासी क्रांतिकारी हिंदुस्तान चले जाएँ और वहाँ क्रांतिकारी तरीकों से मातृभूमि को आजाद कराएँ। इसके बाद करतारसिंह किसी तरह 'भारत रक्षा कानून' की गिरफ्त से बचकर भारत पहुँच गए और हालात को समझने के लिए सारे देश का दौरा करने लगे। इस समय तक भी उनकी उम्र मात्र अठारह साल थी।

भारत पहुँचकर सबसे पहले वह कलकत्ता के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता सुरेंद्रनाथ बनर्जी से मिले। श्री बनर्जी ने उनसे कहा, "तुम अपनी सुविधा और संकल्प के अनुसार काम करो, बंगाल ठीक समय पर तुम्हारी सहायता करेगा।" इसके बाद श्री रासबिहारी बोस से उन्होंने संपर्क स्थापित किया। रासबिहारी बोस उस समय पंजाब नहीं जा सके; लेकिन उन्होंने शचींद्र सान्याल को जालंधर भेजा। लुधियाना स्टेशन पर करतारसिंह उसी डिब्बे में सवार हुए, जिसमें शचींद्र सान्याल चल रहे थे। जालंधर उतरकर करतारसिंह शचींद्र सान्याल को एक बगीचे में ले गए। वहाँ उनके कई साथी प्रतीक्षा कर रहे थे। शचींद्र सान्याल ने उन लोगों से कहा, "आप लोगो मे से नेता कौन है ? उससे बातचीत करना चाहता हूँ।" तब उनमें से एक कार्यकर्ता श्री अमरसिंह ने कहा, "हमें रासबिहारी के नेतृत्व की जरूरत है, ताकि हमें सही निर्देशन मिल सके। ऐसे तो हम सब दिशाहीन हैं।" तब करतारसिंह ने अमरसिंह की हिम्मत बढ़ाई—"फिक्र मत करो, मैं तुम लोगों में से ही कई छुपे रुस्तम निकाल लूँगा।" और करतारसिंह सराभा ने लगभग चार हजार कार्यकर्ताओं को

सगठित कर लिया। इस तरह करतारसिंह सर्वश्रेष्ठ संयोजक भी साबित हुए।

पंजाब की हर छावनी में और भारत में जहाँ-जहाँ पंजाबी सेना थी, करतार सिह ने सब जगह संपर्क स्थापित कर, उन्हें इस बात के लिए राजी कर लिया कि एक खास तारीख को क्रांति हो। लाहौर से लेकर मेरठ, बनारस और बंगाल की बैरकपुर छावनी तक क्रांति की योजना बन गई। श्री रासबिहारी बोस के लिए भी लाहौर में एक सुरक्षित निवास स्थान खोज लिया गया। बम के कारखाने खुल गए। लेकिन क्रांति के निश्चित दिन से एक सप्ताह पूर्व ही भेदिए कृपालसिंह द्वारा योजना विफल कर दी गई। करतारसिंह चाहते तो उस भेदिए को मार देते, लेकिन उन्होंने उसे मारा नहीं। क्रांति की तारीख दो दिन पहले कर दी। फिर भी भेदिए को भनक लग गई और सारी छावनियों से भारतीय सैनिकों के हाथ से हथियार छीन लिये गए।

इधर बंगाल में जर्मनी की ओर से हथियारों से भरे जहाज आने वाले थे। इन जहाजों को बीच में रोककर अंग्रेजी सरकार ने उनपर कब्जा कर लिया। बंगाल के क्रांतिकारी उन हथियारों की प्रतीक्षा ही करते रहे। इस सिलसिले में लाहौर छावनी की मैगजीन पर हमले की योजना के साथ अनेक छावनियों की गश्त योजना भी विफल हो जाने पर सरकार की गिरफ्त में आ जाना, यह सारी कहानी करतारसिंह जैसे बुलंद हौसलेवाले नौजवान की क्रांति में हिस्सेदारी की बेहद रोमांचक कहानी है। जाहिर है, इसका परिणाम क्या होना था—मुकदमा और फिर कालापानी की सजा या फाँसी।

करतारसिंह सराभा जैसे चुस्त बहादुर नौजवान के लिए एक बार फिर बच निकलना मुश्किल न था। श्री रासबिहारी बोस ने उन्हें सलाह दी कि वे काबुल चले जाएँ। सलाह मानकर करतारसिंह काबुल की ओर चल भी पड़े; लेकिन वजीराबाद पहुँचने पर उन्हें खयाल आया कि भगोड़ा कहलाने की अपेक्षा देश के लिए देश में फाँसी पाना एक क्रांतिकारी के लिए अधिक उपयुक्त होगा, और वे वजीराबाद छावनी जाकर सिपाहियों के बीच भाषण देने लगे कि वे अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करें। निश्चित था कि सार्वजनिक रूप से ऐसा कहने पर वे पकड़े जाएँगे और पकड़े भी लिये गए।

इस दास्तान की अजीब बात यह है कि मस्त मौला करतारसिंह को इस बात की तनिक भी परवाह न थी कि अदालत में अपना जुर्म स्वीकार करने का मतलब है, उनके मुकदमे का बिगड़ जाना। पर करतारसिंह ने सब बातें कबूल करने के बाद कहा, ''मेरे लिए मुकदमे का कोई मतलब नहीं है, न मुझे ब्रिटिश सरकार के निर्णय

पर विश्वास है मैं जानता हूँ, जुर्म के इकबाल के दो ही नतीजे हो सकते हैं कालापानी की सजा या फाँसी। मैं गुरु महाराज से दुआ माँग रहा हूँ कि मुझे फाँसी हो, कालापानी की सजा नहीं। मेरी इच्छा है कि फाँसी के बाद इसी धरती पर मैं नया जन्म लेकर फिर देश की सेवा करूँ या अगले जन्म में स्त्री होऊँ तो अपनी कोख से ऐसी विद्रोही संतानें पैदा करूँ, जो देश को आजाद करा सकें।''

इस 'लाहौर षड्यंत्र केस' में कुल इकसठ व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया। जज ने अपने फैसले में लिखा—'करतारसिंह ने अमेरिका, हिंदुस्तान के मार्गों में कोई जगह, कोई अवसर नहीं छोड़ा, जहाँ षड्यंत्र योजना न फैलाई हो। इसलिए इन इकसठ व्यक्तियों में करतारसिंह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है, जिसे अपने कार्यों पर गर्व भी है।' भाई परमानंद ने भी करतारसिंह के बारे में लिखा है—'पंजाब में सारी हलचल का असली लीडर करतारसिंह था। अठारह-उन्नीस की आयु में एक नौजवान का उत्साह और साहस आश्चर्यजनक ही कहा जाएगा। इतनी कम उम्र में ऐसा कुशल संगठक भी मैंने दूसरा नहीं देखा।'

फाँसी की सजा तक करतारसिंह इसी तरह मस्ती में हँसते, भजन गाते रहे। फाँसी तो उन्हें होनी ही थी, हुई भी। इस सारे घटनाक्रम में उल्लेखनीय बात यह है कि सजा की घोषणा से फाँसी की अवधि के बीच करतारसिंह का वजन दस पौंड बढ़ गया था। वह भी केवल इस खुशी में कि वाहेगुरु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार ली, उन्हें कालापानी की नहीं, फाँसी की इच्छित सजा मिली।

यह था उस जमाने के हमारे किशोर क्रांतिकारियों के मन में देश के लिए कुछ करने तथा मर मिटने का अद्‌भुत जोश व उत्साह!

□

जर्मन षड्यंत्र केस

बाघा जतीन के नवयुवक साथी

बाघा जतीन

१९१४-१८ का प्रथम महायुद्ध। भारतीय क्रांतिकारी इन्हीं दिनों भारत में कोई बड़ी क्रांति कर देश को आजाद करा लेना चाहते थे। इसके लिए अनेक देशों में प्रवासी भारतीय सक्रिय थे। पर बीच के भेदियों, मुखबिरों के कारण उनकी एक के बाद एक योजनाएँ विफल होती जा रही थीं और साथ ही चल रहे थे अंग्रेजों की दमन कार्यवाहियों के क्रूर चक्र। फाँसियाँ, लंबी सजाएँ, गोली से शहादत या फरारी। 'अलीपुर

बम केस नासिक षड्यंत्र फिर प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस मे सैकडो नवयुवक बलि चढ़ चुके थे। पर हार मान लेना उन वीरों ने सीखा ही नहीं था।

१९१५ की बड़ी क्रांति योजना विफल रही, फिर भी उसके समानांतर व बाद में जर्मन सहयोग से एक बड़ी क्रांति करने में अनेक क्रांतिकारी, विशेष रूप से बंगाल के नवयुवक सक्रिय थे। ६ दिसंबर, १८७९ को जनमे ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी (एक बार अकेले ही बाघ को मार गिराने के कारण उन्हें 'बाघा जतीन' के नाम से पुकारा जाता था) के नेतृत्व में यह नवयुवक दल संगठित हुआ था। शंघाई के जर्मन कौंसिल जनरल की देख-रेख में दो योजनाएँ बनीं; जो सानफ्रांसिस्को की गदर पार्टी तथा बंगाल के क्रांतिकारी दलों पर निर्भर थीं। योजनानुसार अस्त्र-शस्त्र भेजकर तथा आर्थिक सहायता कर भारत के क्रांतिकारियों की लड़ाई को बल पहुँचाया जाना था।

१९१४ के अंत में पुलिस ने यह खुफिया रिपोर्ट अंग्रेज अधिकारियों को दी कि एक स्वदेशी कपड़े की दुकान के हिस्सेदार ज्योतींद्रनाथ मुखर्जी, अमरेंद्र चटर्जी, रामचंद्र मजूमदार, अतुल घोष और नरेन भट्टाचार्य बड़ी तादाद में अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे कर एक षड्यंत्र कर रहे हैं। अगस्त १९१५ में भी फ्रेंच पुलिस की रिपोर्ट थी कि यूरोप में रहनेवाले भारतीय जल्दी ही भारत में प्रबल विद्रोह करेंगे। उधर युद्ध के दिनों ब्रिटिश पुलिस अत्यधिक चौकन्नी थी, इधर क्रांतिकारी जान हथेली पर लेकर भी कुछ कर डालना चाहते थे। यूरोप से बंबई लौटे जितेंद्रनाथ लाहिड़ी ने कहा—अस्त्र-शस्त्रों की प्राप्ति के लिए जर्मनों से बात करने एक एजेंट को बटेविया भेजा जाए। नरेन भट्टाचार्य (बाद में एम.एन. राय के नाम से प्रसिद्ध) बटेविया भेज दिए गए। वहाँ जाकर उन्होंने अपना नाम 'सी.ए. मार्टिन' रखा। वहाँ उनकी जान-पहचान जर्मन कौंसिल थियोडोर हेलफेरिख से कराई गई। उन्होने बताया कि शस्त्र लेकर एक जहाज कराची रवाना हो रहा है। मार्टिन ने उनसे कहा—कराची के बजाय जहाज को बंगाल भेजें और सुंदर वन के रायमंगल नामक स्थान पर शस्त्र उतारें, जहाँ बंगाल में सक्रिय क्रांतिकारी उनका सही उपयोग करेंगे। जहाज रायमंगल की ओर मोड़ दिया गया। जहाज में तीस हजार राइफलें, हर राइफल के लिए चार सौ कारतूस और दो लाख रुपए की धनराशि थी। मार्टिन यह खबर लेकर बंगाल लौट आए, ताकि अगली व्यवस्था कर सकें। माल को उतारने व उसका उपयोग करने की योजना बनने लगी।

इस पूरे दल के नेता बाघा जतीन स्वामी विवेकानंद और श्री अरविंद के घनिष्ठ संपर्क में रहे थे। गवर्नर के निजी सचिव पद पर कार्यरत इस खूबसूरत व

बलिष्ठ नौजवान ने उनके कहने से अपने पद से इस्तीफा दे दिया था उसी समय क्रांतिकारियों के सपर्क के सदेह में २७ जनवरी, १९१० को य गिरफ्तार कर लिये गए थे; पर प्रमाण के अभाव में छूट गए। और उसके बाद बड़े कौशल से संगठन कार्य में जुट गए। उनके प्रभाव से ही दल में अनेक नवयुवक आ जुटे थे। जदुगोपाल मुखर्जी, भोलानाथ चटर्जी, अतुल घोष, नरेन भट्टाचार्य बाघा जतीन के साथ मिलकर 'मैवरिक' जहाज से माल उतारने के बंदोबस्त में लग गए।

तय हुआ कि माल तीन हिस्सों में बाँटकर तीन जगह उतारा जाए। बंगाल के पूर्वी जिलों के लिए हटिया में। शेष बंगाल के लिए बालासोर में और तीसरा भाग कलकत्ता के लिए कलकत्ता में। दल की शक्ति कम न थी, वे मिलकर निबट सकते थे। बाहर से आनेवाली फौजों का डर उन्हें तीन रेल मार्गों पर तीन पुल उड़ाकर दूर करना था। इसके लिए यथासमय साथी भेज दिए गए। यतींद्र को मद्रास से आनेवाली रेल को रोकने का काम दिया गया। नरेन चौधरी और फणींद्र चक्रवर्ती को हटिया भेज दिया गया, जहाँ माल उतारने के लिए एक जत्था जाने वाला था। नरेन भट्टाचार्य और विपिन गांगुली के नेतृत्व में एक दल कलकत्ता के पास अस्त्रागार पर कब्जा लेने के लिए रवाना हो गया। यह दल फोर्ट विलियम पर धावा बोल, फिर कलकत्ता को कब्जे में लेने की योजना बनाने लगा। भोलानाथ चटर्जी चक्रधरपुर पुल उड़ाने के लिए चले गए। रायमंगल पर माल उतारने के लिए जदुगोपाल मुखर्जी वहाँ पहले भेजे गए कि प्रारंभिक व्यवस्था करें। उन्होंने एक जमींदार से बात कर मजदूरों और नावों का प्रबंध कर लिया। पुलिस को बाघा जतीन की तलाश थी, इसलिए रायमंगल जाने के लिए वह पहले ही बालासोर में जाकर छिप गए थे। चित्तप्रिय चौधरी, ज्योतिषचंद्र पाल, मनोरंजन सेनगुप्ता, नरेंद्र दासगुप्ता आदि कुछ साथी मुख्य स्थल पर बाघा की मदद के लिए तैनात थे।

मैवरिक जहाज रात को रायमंगल के पास समुद्र में आने वाला था। ये पाँच साथी नाव से वहाँ जा पहुँचे। पर पाँच दिन तक भूखे, थके ये लोग परेशान हो गए, न मैवरिक पहुँचा, न बटेविया से मार्टिन का कोई संदेश, जो अस्त्र-शस्त्र लेने दुबारा वहाँ भेजे गए थे। प्रतीक्षारत क्रांतिकारियों के पास एक बंगाली यह खबर लेकर बैंकाक से आया कि श्याम का जनरल कौंसिल नाव के जरिए पाँच हजार राइफलें, उनके लिए कारतूस और एक लाख रुपया रायमंगल भेज रहा है। इन लोगों ने सोचा, किसी कारण बड़ी खेप नहीं आ सकी या रास्ते में पकड़ी गई तो यह उसकी क्षतिपूर्ति है। इन्होंने संदेशवाहक को बटेविया होकर बैंकाक जाने के लिए राजी किया कि हेलफेरिख से कहकर पहली योजना न त्यागने या उसके बदले और

हथियार भेजने की बात करे मार्टिन को भी सही समाचार के लिए तार भेजा गया पर ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ इस बीच सुंदर वन का एक मानचित्र और मैरविक जहाज की यात्रा संबंधी एक दस्तावेज लग गया और जहाज से माल उतारने के स्थल पर तैनात भूखे, थके पाँचों क्रांतिकारी साथियों को ९ सितंबर, १९१५ को एक बडी पुलिस टुकड़ी ने घेर लिया।

तीन घंटे के आमने-सामने युद्ध में दर्जनों पुलिसवाले मार गिराए गए। इस शताब्दी की इस पहली सीधी मुठभेड़ में क्रांतिकारी जान पर खेलकर बहादुरी से लडे। आखिर उनकी गोलियाँ खत्म हो गईं। चित्तप्रिय चौधरी पहले शहीद हुए। नेता बाघा जतीन छह गोलियाँ खाकर बुरी तरह घायल हुए और बालासोर अस्पताल मे १० सितंबर, १९१५ को उनकी मृत्यु हुई। ज्योतिषपाल, मनोरंजन सेनगुप्ता और नरेंद्र दासगुप्ता घायल होकर गिरफ्तार हुए। इसके बाद मनोरंजन सेनगुप्ता और नरेंद्र दासगुप्ता को २२ नवंबर, १९१५ को फाँसी दे दी गई। ज्योतिष चौदह साल की जेल की सजा पाकर अंडमान गए, जहाँ अत्याचार सहते-सहते वे पागल हो गए और बरहामपुर जेल में ४ दिसंबर, १९२४ को चल बसे। इस तरह घटनास्थल पर उपस्थित पाँचों साथी असफल क्रांति की भेंट चढ़ गए।

उधर मार्टिन को खबर भेजने के लिए जो तार दिया गया था, उससे सुराग पा धर-पकड़ शुरू हुई। भोलानाथ चटर्जी ने पुलिस के हाथ पड़ने से पहले आत्महत्या कर ली। मैरविक का माल अमेरिकी सरकार ने पकड़ लिया। मार्टिन अमेरिका भाग निकले थे, पर वहाँ गिरफ्तार कर लिये गए। बाद में फरारी जीवन में ही वह एम.एन राय हो गए थे। पहले नरेन भट्टाचार्य से मार्टिन हुए थे। मार्टिन ने उन दिनों शंघाई के जर्मन कौंसिल को, जो अगली खेप रायमंगल भेजने वाले थे, को बताया था कि अब वे जहाज रायमंगल न भेज हटिया भेजें। इधर मार्टिन के साथी हटिया में गिरफ्तार हो गए। यह सारी कहानी और बाघा जतीन की मृत्यु की खबर सुनकर बचे-खुचे साथी लुक-छिपकर फ्रांसीसी बस्ती चंद्रनगर जा निकले।

लाहौर षड्यंत्र नाम से पूर्व असफल क्रांति की तरह क्रूर दमन कार्यवाही से यह क्रांति योजना भी असफल हो गई। पर इससे आगे न क्रांति कार्यवाही रुकी, (अगला चटगाँव शस्त्रागार कांड इसका प्रमाण है) न ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा गोली-फाँसी से या लंबे समय तक जेल-यातनाओं से मार दिए गए क्रांतिकारियो का नाम ही कोई मिटा पाया; यद्यपि अज्ञात शहीदों की संख्या भी कम नहीं है। आनेवाली पीढ़ियाँ इन ज्ञात-अज्ञात, सभी शहीदों को अवश्य नमन करेंगी।

□

क्रांति की मशाल को बंगाल से असम ले जानेवाले

नलिनीकांत बागची

नलिनीकांत बागची

बंगाल के वीरभूम के एक गाँव में जनमे नलिनीकांत बागची ने छात्रवृत्ति लेकर मैट्रिक पास की। फिर बहरामपुर कॉलेज में एफ.ए. शिक्षा के लिए प्रवेश लिया ही था कि मधुरभाषी, किंतु जन्म से वीरोचित साहसवाले इस किशोर को क्रांतिकारियों के संपर्क में आने का अवसर मिल गया। तीव्र बुद्धिवाला प्रतिभाशाली छात्र। माता-पिता का इकलौता पुत्र। उनकी आशाओं का केंद्र। चाहता तो एक

सुनहरा, समृद्ध भविष्य उसके सामने था पर उस काल की समृद्धि उच्च शिक्षा या धन नहीं, देश के लिए बढ़-चढ़कर त्याग-बलिदान कर नाम कमाने, शहीद होकर अमर होने की कामना थी। बागची भी ऐसे ही समृद्ध सपने का धनी था।

बंगाल के अनेक किशोर तब समय की सामान्य धारा के विरुद्ध खड़े हो देश को आजाद कराने के लिए क्रांति साहित्य पढ़ रहे थे, स्वतंत्रता की ओर जल्दी ले जानेवाले रास्ते के चयन पर बहसें कर रहे थे। इसके लिए क्रांति मंत्र की दीक्षा ले रहे थे। उनकी प्रेरणा के स्रोत थे—फ्रांस की राज्य क्रांति, इटली की स्वाधीनता, आयरलैंड का संघर्ष और उन्हें दीक्षा देनेवाले क्रांति नेता। स्कूल, कॉलेज, हॉस्टल, मित्रों के घर—सभी जगह यही बहसें, यही तैयारी और कुछ कर दिखाने की होड। पढाई के साथ क्रांति साहित्य का अध्ययन और कसरत, तेज दौड़ना, हथियार चलाना आदि प्रशिक्षण अनिवार्य-सा—वह भी प्रतिज्ञाबद्ध, अनुशासनबद्ध होकर कि न तो समय पर कोई कमजोरी प्रदर्शित करे, न धोखा दे और न ही धोखा देकर मुखबिर बननेवाले को बख्शे। इसके लिए नेता का हुक्म मानने के साथ-साथ दल का अनुशासन मानना भी निहायत ज़रूरी था। नलिनीकांत बागची सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र में ही इस सबमें दीक्षित हो गए।

तीव्र बुद्धि के थे ही, दीक्षा में भी खरे उतरने पर उन्हें भागलपुर कॉलेज मे प्रवेश लेने की सलाह दी गई, ताकि बिहार में क्रांति दल का गठन कर सकें। यह बंगाली किशोर अपना धोती-कुरता व बाल बनाने का बंगाली ढंग छोड़, देहाती बिहारी जैसी पोशाक—मोटी धोती और मिरजई पहनने लगा। सिर पर चोटी रख ली और देहाती लहजे की हिंदी भी बोलने लगा कि किसीको शक न हो। फिर भी जब वह पुलिस की निगाह में आ गए तो बिहार से असम भेज दिए गए; क्योंकि वहाँ अभी क्रांति की मशाल जलाई जानी थी। आखिर बागची जैसा समर्पित क्रांतिवीर दूसरा कहाँ मिलता! कुछ दिन बागची ने बंगाल, असम में घूम-फिरकर दौरा किया कि स्थितियाँ व रास्ते समझ सकें, फिर डिब्रूगढ़ में अस्थायी निवास के बाद गुवाहाटी चले गए और वहीं से अपना काम शुरू किया। कुछ समय वहीं रहकर बहुत श्रम से और बहुत जोखिम उठाकर उन्होंने अपने सभी क्रांतिकारी साथियों की सहायतार्थ एक उपयोगी किताब की रचना कर डाली, जिसमें असम के सरकारी गुप्त मार्गों की जानकारी दी गई। बाद में यह पुस्तक पुलिस के हाथ लग गई और जब्त कर ली गई।

फिर आया कयामत का वह दिन, जिसमें सत्रह क्रांतिकारियों की इस लडाका टोली के पंद्रह साथी मारे गए। बागची व एक अन्य साथी—केवल दो ही

बच निकले पर बाद में किस प्रकार बागची ने कैसे कैसे भयानक कष्ट देखे और फिर पुलिस मुठभेड़ में एक योद्धा की तरह लड़ते लड़ते शहीद हो गए बागची व उनके साथियों की यह कहानी अत्यंत रोमांचक है—

गुवाहाटी के एक मकान में ये सत्रह साथी एक साथ रहते थे। दिन भर अपने काम से बाहर अलग-अलग दिशाओं में। रात को सभी के सिरहाने भरी पिस्तौल कि न जाने कब पुलिस से सामना हो जाए। एक क्रांतिवीर खिड़की के पास खड़ा रहकर बाहर की आहट लेता, पहरे पर तैनात, शेष अपने-अपने बिस्तर पर। पर हर दो घंटे बाद पहरेदार साथी की ड्यूटी बदल दी जाती थी, ताकि बारी बारी से सभी नींद ले सकें और बाहर से आनेवाले किसी संभावित खतरे से सतर्क भी रहें। तय था कि कभी पुलिस आती दिखे तो पहरेदार साथी से सूचना पा, सब अपनी-अपनी पिस्तौलें सँभाल लेंगे और मौका देख पिछली ओर से भाग लेंगे या मुठभेड़ के लिए तैयार रहेंगे। पर ३ जनवरी, १९१७ की रात अचानक संकट आन पहुँचा। एक साथी के बाहर पुलिस के हाथ लग जाने से उस मकान का भेद पुलिस पा गई और रात को आ धमकी। मकान को चारों ओर से घेर लिया गया।

पहरेदार साथी से सूचना मिलते ही एकदम उठकर सभी ने अपनी पिस्तौलें सँभाल लीं। भागने का अवसर नहीं था, फलत: सारे एक साथ आँधी के वेग से निकल, पुलिस टुकड़ी पर टूट पड़े। निरंतर गोलीवर्षा से पुलिस घबरा गई। तभी अवसर देख, गोली चलाते हुए सब भाग निकले और पीछे की एक पहाड़ी पर चढ़ गए। वहाँ से आगे जाने का रास्ता न मिला और तीसरे पहर पुलिस ने पहाड़ी को घेर लिया। दोनों ओर से गोलियाँ चलने लगीं। दोनों ओर के कई व्यक्ति—पुलिसवाले और ये पंद्रह साथी मारे गए। केवल दो बचकर निकल भागने में सफल हुए, जिनमें एक बागची थे। आगे चलकर दूसरा साथी अलग दिशा में चला कि एक साथ होने से पहचाने न जाएँ।

नलिनीकांत बागची एक निर्जन पहाड़ पर चलने लगे। बिना खाए, बिना सोए, बिना जूते पैदल चलते उनके पैरों में छाले पड़ गए। बदन पर एक पहाड़ी कीड़ा इस तरह चिपक गया कि हटाने की हर कोशिश बेकार हो गई। भूख प्यास, बेहद थकान, उसपर कीड़े के कारण पीड़ा और परेशानी। किसी तरह गिरते-पड़ते गुवाहाटी से भाग, बिहार होते हुए अपनी भूमि बंगाल में कलकत्ता तक आ पहुँचे। आने पर कहीं कोई साथी नहीं मिला तो परेशान हो गए। साथ में पिस्तौल लिये कहाँ जाएँ? कहाँ रहें? जब एकदम हार गए तो किले के मैदान में एक पेड़ के नीचे जाकर लेट गए; क्योंकि उन्हें तेज बुखार चढ़ आया था और चेचक निकल आई थी

या शायद उस कीडे के जहर ने अब उनके बदन पर अपना रग दिखाया हो पर वह बहुत पस्त हालत में थे और बेहोश थे। कौन देखे? कौन पहचाने? कौन मदद करे?

उन दिनों बंगाल में अंग्रेजों की दमन कार्यवाहियों के कारण क्रांतिकारी बेहद कष्ट में और सर्वाधिक असुरक्षित हो गए थे। पर बागची ने घोर संकट में भी धीरज नहीं खोया था। भला ऐसे समय में भी भगवान् उनकी सहायता के लिए किसीको क्यों नहीं भेजता! एक पुराने साथी ने अचानक उन्हें उस दशा में देखा और पहचानकर उठा ले गए। उनके पास भी पैसा न था। डॉक्टर के पास ले जाना खतरे से खाली नहीं था। उन्हें बाग बाजार की एक छोटी सी कोठरी में रखा गया और वही साथी उनकी सेवा में जुट गए। केवल मट्ठा पिलाकर और मालिश करके ही उनमे नए प्राण फूँके गए। धीरे-धीरे बागची चंगे होते गए और उठ बैठे। तब वह साथी उन्हे तारिणी प्रसन्न मजूमदार के पास छोड़कर चले गए।

ठीक होते ही नलिनीकांत बागची फिर सक्रिय हो गए और दल के नेता बन गए। १५ जून, १९१८ को फिर पुलिस से उनकी मुठभेड़ हो गई और उनकी शहादत का दिन आ गया। पहले तारिणी बाहर निकला और अपनी गोली से एक पुलिस इस्पेक्टर को मारने के बाद स्वयं भी गोली खाकर वहीं शहीद हो गया। नलिनी ने तभी बाहर आकर गोली चला दी; पर जरा सा निशाना चूक जाने से पुलिस दल का नेता अधिकारी बच गया। उसी समय दो ओर से दो गोलियाँ किशोर नलिनी के शरीर में आ लगीं और वह लहूलुहान स्थिति में ही गिरफ्तार कर लिये गए। लड़खड़ाते हुए पुलिस गाड़ी पर सवार हुए। पर पुलिस उनसे कुछ उगलवाने के लिए कड़ाई से पूछताछ करती या उनपर जुल्म ढाती, ऐसी स्थिति उनकी बची ही न थी। जल्दी ही उसी दिन उनकी मृत्यु हो गई। तब भी मृत्यु से पूर्व जब पुलिस ने उनसे कोई बात करनी चाही तो अशक्त नलिनी ने सशक्त वाणी से उत्तर दिया ''मुझे परेशान मत करो, शांति से मरने दो।'' और वह 'वंदेमातरम्' कहते चिरनिद्रा में सो गए। इतनी बड़ी लड़ाई लड़कर, इतने कष्ट झेलकर, गोलियों से लहूलुहान होकर भी शांति से शहीद होनेवाले नलिनीकांत बागची १६ जून, १९१८ को अपनी शहादत के दिन केवल अठारह वर्षीय किशोर ही थे। आज के सुविधाकांक्षी किशोर क्या जान सकेंगे कि कैसे दिन थे वे! और कैसी थी आजादी के लिए किशोर-युवा दिलों में लड़ने-मरने की उमंग!

□

मैनपुरी षड्‌यत्र केस

गेंदालाल दीक्षित के किशोर साथी

गेंदालाल दीक्षित

उत्तर प्रदेश में क्रांतिकार्य के लिए कई षड्‌यंत्र केस चले, पर 'मैनपुरी षड्‌यंत्र केस' उनमें विशेष स्थान रखता है। इस केस में बहुत लोगों के विरुद्ध केस चला और इसके नेता ने अपार कष्ट झेले; अंततः उनकी मौत भी बेहद दुःखद स्थितियों में हुई। यह नेता थे—गेंदालाल दीक्षित, जिन्होंने देश को आजाद कराने का बड़ा सपना देखा, उसके लिए बड़ा संगठन, बड़ा कार्यक्रम बनाया; किंतु हर

बार मुखबिरो के हाथो हारे और बडे कष्ट झेले पर यहा स्व गेदालाल दीक्षित के जीवन के विवरण में न जाकर केवल उनके कार्य से जुड़े उनके कुछ किशोर व नौजवान शिष्यों और साथियों की प्रासंगिकता को ही रेखांकित करना है कि उस अग्निकाल में कितने किशोर, किस-किस तरह अपनी जान हथेली पर लिये स्वदेश के स्वराज हेतु सक्रिय थे।

नेता गेंदालाल दीक्षित ने पहले अति उत्साह में लक्ष्मणानन्द ब्रह्मचारी के साथ मिलकर चंबल और यमुना के बीच रहनेवाले डाकुओं को भी अपने संगठन मे लिया कि उनकी मदद से डाके डालकर संगठन कार्य के लिए धन जुटाया जाए। ब्रह्मचारी इस कार्य में दक्ष साबित हुए। पर रास्ते के एक पड़ाव में एक मुखबिर के कारण उनका अस्सी व्यक्तियों का दल खतरे में पड़ गया। उसने खाने में जहर मिलाकर सबको मारने की कोशिश की; पर अपराधी ब्रह्मचारी के हाथों पकड़ा गया और जंगल में ही उसे गोली मार दी गई। लेकिन दुर्भाग्य से गोली की आवाज सुनकर आसपास कहीं तैनात पुलिस टुकड़ी ने दल को घेर लिया। भिंड के जंगल में ३१ जनवरी, १९१८ को हुई इस मुठभेड़ में ब्रह्मचारी सहित आठ क्रांतिकारी मारे गए, पच्चीस घायल हो गए, जिनमें से कई लोग बाद में शहीद हुए। गेंदालाल सहित अन्य गिरफ्तार कर लिये गए। उन्हें ग्वालियर के किले में बंद कर दिया गया।

गेंदालाल द्वारा बनाए गए इस संगठन का नाम 'शिवाजी समिति' था, जो इस घटना के बाद बिखर गया। पर इसके पूर्व गेंदालालजी को डाकुओं को दल मे शामिल कर ग्वालियर में डाके डलवाने की अपनी गलती समझ में आ गई थी। अतः उन्होंने उत्साही व समर्पित नवयुवकों को प्रशिक्षित करने के लिए मैनपुरी मे एक 'मातृवेदी' संस्था भी बना ली थी, जिसमें अनेक भले घरों के लड़के थे और जिनका दल में भरती होने का एक ही उद्देश्य था—देशभक्ति। जब इन लड़कों को मालूम हुआ कि नेता गेंदालाल दीक्षित पकड़ लिये गए हैं और ग्वालियर किले मे बंद हैं, तो वे उन्हें कैद से मुक्त कराने की योजना बनाने लगे। पर एक मुखबिर ने फिर धोखा दिया। षड्यंत्र का भंडा फूट गया। लड़के गिरफ्तार कर लिये गए। मुखबिर सोमदेव ने पुलिस को बता दिया कि इनके नेता गेंदालाल दीक्षित ही है, जो इस समय ग्वालियर किले में कैद हैं। गेंदालालजी को ग्वालियर से मैनपुरी ले आया गया। यही 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' कहलाता है, जिसमें अनेक को लंबी सजाएँ हुईं।

आगे की कहानी यह है कि गेंदालाल दीक्षित ने लड़कों को बचाने के लिए

पुलिस अधिकारियों से कहा इन बच्चों को क्या मालूम ? असली मुजरिम तो मैं हूँ। ये भला क्या जानते हैं कि इनमें से कोई मुखबिर बनेंगे ? मैं स्वयं मुखबिर बनने को तैयार हूँ। मैं बंगाल, बंबई, उत्तर प्रदेश के सैकड़ों क्रांतिकारियों को जानता हूँ। चाहूँगा तो सैकड़ों को पकड़वा दूँगा।'' पुलिसवाले उनके इस बयान पर बेहद खुश हो गए कि (उनकी भाषा में) गिरोह का सरदार ही मुखबिर बनने को तैयार है तो हमें इन छोटे लड़कों से क्या लेना-देना! नेता गेंदालालजी को अन्य मुखबिरों के साथ जेल में रख दिया गया, जहाँ से वह एक दिन रात को गायब हो गए और साथ में एक पेशेवर मुखबिर को भी लेते गए।

उस पेशेवर मुखबिर ने उन्हें पकड़वाया तो नहीं, पर उन्हें एक कोठरी में बंद कर उनका सारा सामान लेकर चंपत हो गया। तीन दिन तक गेंदालालजी भूखे-प्यासे वहाँ बंद रहे; फिर किसी तरह निकलकर, कहीं आश्रय न पाने पर, घर की ओर चले। वहाँ भी उन्हें आश्रय नहीं मिला तो किसी तरह लुकते-छिपते दिल्ली पहुँचे। पर पास में न पैसा था, न कहीं सुरक्षा। पुलिस पीछे थी और साथी जेल में या फरार। रोग-जर्जर शरीर के साथ उन्होंने एक प्याऊ तक में नौकरी की। फिर २१ दिसंबर, १९२० को दुःखद व दयनीय हालत में चल बसे। देश को आजाद कराने की तड़प मन में लिये, अपना सबकुछ खो देनेवाले इस क्रांतिकारी को फाँसी या आजीवन कालापानी की सजा तो नहीं हुई, पर फरारी जीवन का यह दुःखद अंत भी उनकी शहादत को क्रांति-इतिहास में अंकित कर गया।

उधर गेंदालालजी की जेल से फरारी के बाद उनके किशोर व नौजवान साथियों पर फिर विपत्ति के बादल छा गए। कुछ मारे गए, कुछ फरार हो गए। शेष को लंबी सजाएँ मिलीं। इस 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' में पकड़े गए क्रांतिकारियों व उन्हें दी गई सजाओं का विवरण श्री मदनलाल वर्मा 'क्रांत' की पुस्तक 'सरफरोशी की तमन्ना' (भाग एक) में 'मैनपुरी जजमेंट फाइल' से उद्धृत इस प्रकार है—'अभियुक्तों की संख्या कुल तैंतीस, इनमें से बाईस को गिरफ्तार किया गया, ग्यारह भूमिगत हो गए, दो जेल से फरार हो गए, अदालती कार्रवाई में प्रमाण न मिलने पर ग्यारह छोड़ दिए गए। शेष नौ लोगों को निम्नानुसार सजाएँ हुईं—

श्री दम्मीलाल—सात वर्ष, श्री प्रभाकर—पाँच वर्ष, श्री राजाराम भारतीय—तीन वर्ष, श्री गोपीनाथ—सात वर्ष, श्री किशोरीलाल—तीन वर्ष, श्री सिद्धगोपाल—पाँच वर्ष, श्री चंद्रधर—पाँच वर्ष, श्री फतेह सिंह—पाँच वर्ष, श्री मुकंदीलाल—तीन वर्ष। भूमिगत लोगों में पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल', देवनारायण भारतीय, गंगासिंह, माधोराम, प्रतापसिंह, शिवकृष्ण, गोविंदसिंह, शिवचरण लाल। दो अभियुक्त—

सोमनाथ शर्मा और दलपतसिंह सरकारी गवाह बन गए थे; जबकि कालीचरण शर्मा प्रमाण के अभाव में छोड़ दिए गए थे।'

इसी प्राप्त विवरण के अनुसार, इन लगभग सभी लोगों की औसत उम्र उन्नीस वर्ष से अधिक नहीं थी। नेता गेंदालाल दीक्षित और पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' (जो आगे काकोरी कांड में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए और जिनका देशभक्तिपूर्ण लेखन भी उन्हें अमर कर गया) के सिवाय शेष नाम आज लगभग भुला दिए गए हैं।

□

मैनपुरी केस मे फरार
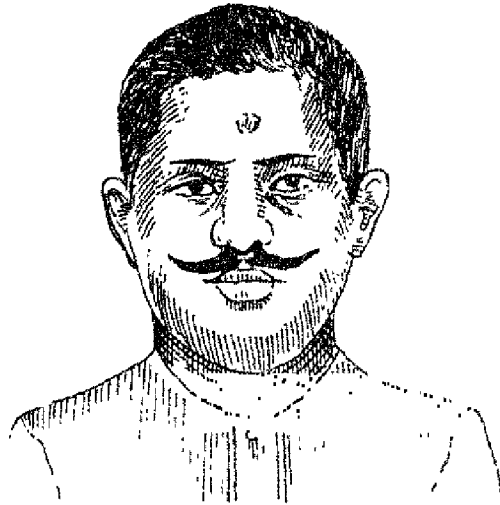
रामप्रसाद 'बिस्मिल'

रामप्रसाद 'बिस्मिल'

पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' आगे 'काकोरी कांड' के नेता के नाते और 'सरफरोशी की तमन्ना' जैसी क्रांतिकारी गजल तथा आजादी के बाद गणतंत्र भारत की अपनी संवैधानिक कल्पना के कारण बहुत प्रसिद्ध हुए। एक वरिष्ठ क्रांतिकारी तो वह थे ही, अपनी क्रांतिकारी विचारधारा व आत्मकथा सहित अपनी अनेक पुस्तकों से भी उन्होंने काफी नाम कमाया। अमर शहीद भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और सूर्यसेन

किस प्रकार उनकी मृत्यु हुई यह एक अलग कारुणिक कहानी है

फिर मैनपुरी षड्यंत्र केस में पकड़े गए तेतीस लोगों में से प्रमाण के अभाव में छोड़ दिए गए ग्यारह को छोड़कर, शेष बाईस में से ग्यारह लड़के भूमिगत हो गए, दो जेल से फरार हुए और शेष नौ लोगों को सात से तीन साल तक की सजाएँ हुई। इन्हें आजीवन जेल, लंबी सजाएँ या फाँसी इसलिए नहीं हुई कि अधिकतर अभियुक्त नाबालिग थे। बिस्मिल भी उस समय काफी कम उम्र के थे; पर उस उम्र में भी उनकी समझ इतनी परिपक्व थी कि फरारी जीवन में अंत तक पकड़े नहीं गए और भूमिगत रहते भी पठन-पाठन, लेखन कार्य में व्यस्त रहकर समय का बहुत अच्छा उपयोग कर सके। उनकी आगे की कहानी तो 'काकोरी कांड' के नेता के रूप में जग-जाहिर है। यहाँ उनका किशोर वय का करिश्मा ही प्रासंगिक है।

□

रामप्रसाद 'बिस्मिल' और उनके किशोर-नवयुवक साथी
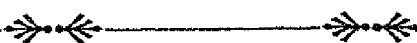
'प्रथम लाहौर षड्यंत्र केस' की क्रांति योजना के एक प्रमुख संगठक श्री शचींद्र सान्याल को उस केस में आजीवन कालापानी की सजा मिली थी, पर विश्वयुद्ध की समाप्ति पर आम माफी में वह २० फरवरी, १९२० को छोड़ दिए गए थे। उन्होंने उत्तर भारत के नवयुवकों में निराशा व बेचैनी देखकर क्रांतिकारी आंदोलन को फिर से पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। चौरीचौरा की घटना मे हिंसा के प्रयोग से दुःखी होकर गांधीजी ने अपना असहयोग आंदोलन वापस ले लिया था। जो क्रांतिकारी उनके इस कदम से निराश व नाराज थे, वे सब पुनर्गठित संस्था में आने के लिए तैयार हो गए। 'मैनपुरी षड्यंत्र केस' में फरार रामप्रसाद 'बिस्मिल' उन दिनों सारी गतिविधियों से हटकर आगरा में अपना व्यवसाय जमा रहे थे तथा पुस्तकें लिख-बेचकर अपना काम चला रहे थे। आम माफी में जब उनके खिलाफ वारंट वापस ले लिया गया तो वह अपने घर शाहजहाँपुर चले आए थे और ऐसे किसी अवसर की तलाश में ही थे कि ऐन वक्त पर सान्याल ने शाहजहाँपुर जाकर उनसे भेंट की। सान्याल उनके पूर्व अनुभव का लाभ लेना चाहते थे और बिस्मिल भी फिर से कुछ नया करना चाहते थे। उन्होंने सान्याल के नए दल और 'अनुशीलन समिति' को मिलाकर बनाए गए नए संगठन 'हिंदुस्तान प्रजातांत्रिक संघ' की सदस्यता स्वीकार कर ली।

शचींद्र सान्याल ने जब नया दल गठित करना शुरू किया था, उन्हीं दिनो बंगाल की 'अनुशीलन समिति' की ओर से क्षेत्रसिंह ने आकर बनारस में 'कल्याण आश्रम' खोल दिया था, जो अपना बाहरी रूप भजन मंडली का रखते हुए गुप्त रूप से क्रांतिकारी गतिविधियों को समर्पित था। उद्देश्य समान होने के कारण कुछ

समय बाद दोनो दल एक हो गए थे इस नए संगठन का नाम हो हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन रखा गया था बिस्मिल के शामिल होने से संगठन और मजबूत हुआ फिर इसमे बनारस के शचींद्रनाथ बख्शी राजेंद्रनाथ लाहिडी रवींद्रमोहन कार, कानपुर के सुरेश बाबू, शाहजहाँपुर के अशफाक उल्ला, बंगाल अनुशीलन समिति के प्रतिनिधि योगेंद्र चटर्जी, शाहजहाँपुर के नवादा गाँव के ठाकुर रोशनसिंह, चंद्रशेखर तथा दामोदर स्वरूप सेठ, भूपेंद्र सान्याल, रामकृष्ण खत्री, मुकंदीलाल जैसे अन्य कई लोग भी आ मिले। लाहौर के सरदार भगतसिंह और बंगाल के बटुकेश्वर दत्त जैसे क्रांतिवीर भी दल के सदस्य बन गए। इस तरह कलकत्ता से लाहौर तक इसका विस्तार कर लिया गया। सारे देश में 'क्रांति' नाम का पीला परचा भी पोस्टर के रूप में चिपका दिया गया। अब संगठन के सामने कार्य-संचालन के लिए धन की समस्या आड़े आई।

क्रांतिकार्य के लिए इसके पूर्व मैनपुरी के श्री गेंदालाल दीक्षित के नेतृत्व में काम करते हुए पं. रामप्रसाद बिस्मिल डकैतियाँ डालने का अनुभव ले चुके थे। अब भी पहले कुछ गाँवों में डकैतियाँ डाली गई; पर इससे काम चलने वाला नहीं था। फलतः रेलगाड़ी रोककर सरकारी खजाना लूटने की वृहत् योजना बनाई गई, जिसके योजनाकार और अगुआ थे—पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल'। अशफाक उल्ला जैसे कुछ साथी पहले सरकार को इतनी बड़ी चुनौती दे, साथियों के जीवन के लिए खतरा मोल लेने के पक्ष में न थे। पर नेता बिस्मिल के पक्ष में भी कम लोग न थे, विशेष रूप से दल में सबसे कम उम्र के चंद्रशेखर (हमेशा आजाद रहने व कभी पुलिस की पकड़ में न आने के कारण 'आजाद' नाम उनका बाद में पड़ा।) और मन्मथनाथ गुप्त। अंत में लाहिड़ी व अशफाक उल्ला भी सहमत हो साथ हो लिये। काकोरी डकैती की यही पृष्ठभूमि है।

श्री मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार, काकोरी लखनऊ जिले का एक छोटा सा गाँव है। इसे पहले कोई नहीं जानता था; पर इस घटना के बाद सारे देश में जाना गया और क्रांति-इतिहास में भी स्थान पा गया। क्रांतिकारियों को विदेश से आनेवाले शस्त्र खरीदने के लिए ही मुख्यतः इस डकैती की योजना बनानी पड़ी थी और इसके लिए चलती रेलगाड़ी रोककर रेलवे के थैले लूट लेने की बात तय की गई थी। इस काम के लिए दल के दस सदस्य चुने गए—पं. रामप्रसाद बिस्मिल (नेता), राजेंद्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह, अशफाक उल्ला खाँ, शचींद्रनाथ बख्शी, मुकंदीलाल, बनवारीलाल, केशव, मन्मथनाथ गुप्त, चंद्रशेखर, मुरारीलाल शर्मा। शेष लोग बाहर के अन्य कार्यों में संलग्न थे।

श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास में इस डकैती का वर्णन इस प्रकार किया है—'हम दस लोगों में से तीन व्यक्ति—अशफाक उल्ला, राजेंद्र लाहिड़ी और शचींद्र बख्शी सेकेंड क्लास के डिब्बे में सवार हुए। इस टुकड़ी का नेतृत्व अशफाक कर रहे थे। चार व्यक्ति थर्ड क्लास के डिब्बे में चढ़े। पं. रामप्रसाद बिस्मिल इस सारे कार्य का नेतृत्व कर रहे थे। हम लोगों के पास चार नई माउजर पिस्तौल, हर पिस्तौल के साथ पचास से अधिक कारतूस और अन्य कई छोटे-मोटे हथियार थे। जाहिर है कि हम पूरी तैयारी करके आए थे। शाहजहाँपुर से आए लोग छेनी, घन, हथौड़े आदि भी साथ ले आए थे। एक निर्दिष्ट स्थान पर आकर सेकेंड क्लास में बैठे साथियों ने खतरे की जंजीर खींचकर गाड़ी रोक दी। गार्ड उतरकर उस डिब्बे की ओर आया, जहाँ से जंजीर खींची गई थी। मुसाफिर खिड़कियों से झाँक-झाँककर देखने लगे। उस समय दिन की रोशनी कुछ-कुछ बाकी थी। गाड़ी खड़ी होते ही हम लोग अपने-अपने डिब्बों से उतर पड़े। गार्ड को पिस्तौल दिखाकर औंधे मुँह जमीन पर लेटने की आज्ञा दी गई। वह उसी तरह लेट गए। उतरे सब लोगों ने अपने-अपने हथियार निकाल गाडी के समानांतर दोनों ओर हवा में गोलियाँ चलाना शुरू कर दिया। यात्रियों को चिल्ला-चिल्लाकर आगाह कर दिया गया, किसीको कुछ नहीं होगा, बस आप डिब्बों से बाहर न आएँ। फिर भी एक यात्री उतरा और गोली से मारा गया। शेष डरकर अपने-अपने स्थान पर जमे रहे।

'शेष साथी रेल के थैलोंवाले डिब्बे में घुस गए। खजानेवाले बॉक्स की चाबी गाड़ी के किसी कर्मचारी के पास न थी। अत: संदूक को धक्के देकर नीचे गिरा दिया गया। साथियों ने घन आदि निकालकर संदूक को तोड़ना शुरू किया; पर मामूली सूराख ही कर पाए। तब पास में पहरे पर तैनात अशफाक उल्ला अपना हथियार दूसरे को सौंप सामने आए और उन्होंने अपने बलिष्ठ हाथों से सूराख बडा कर लिया। फिर संदूक का धन निकालकर रुपयों के थैले चादरों में बाँध लिये गए। इसी समय लखनऊ से आकर लखनऊ मेल वहाँ से गुजरी। हम लोगों ने अपने हथियार छुपा लिये और हमारे धड़कते दिलों के बीच लखनऊ मेल गुजर गई। आसन्न खतरा टल गया। गाड़ी निकल जाने के बाद हमने अपना शेष कार्य पूरा किया और थैले लेकर झाड़ियों की ओर चल दिए। यह सारा काम हमने मुस्तैदी से कुल दस मिनट में समाप्त कर लिया था। गाड़ी में बैठे हथियारबंद हिंदुस्तानी हमारी गोलियों से डर जहाँ-के-तहाँ बैठे रहे थे और एक गोरे मेजर साहब ने अपनी खिड़की का लकड़ी का जंगला ऊपर चढ़ा लिया था। लखनऊ से पहले उसे खोलने

से उन्होने इनकार कर दिया था इसलिए वहा तो हमारा काम निर्विघ्न संपन्न हो गया था पर आगे का खतरा तो उठाना ही था

यद्यपि इस काकोरी ट्रेन डकैती में कुल दस क्रांतिकारी साथी शामिल थे, पर धर-पकड़ के समय बनवारी लाल ने मुखबिर बन सभी का राज खोल दिया था। तब चालीस से अधिक लोग गिरफ्तार किए गए। कई ऐसे नवयुवक भी पकड़े गए, जिनका दल से या इस कांड से कोई संबंध न था। ये लोग बाद में छूट गए। छोड़े जाने के बाद कुल चौबीस अभियुक्त बचे। इनमें से अशफाक उल्ला, शचींद्र बख्शी उस समय पकड़े नहीं जा सके थे। अठारह महीने तक चले मुकदमे के बाद कुल सजाएँ इस प्रकार हुईं—पं. रामप्रसाद बिस्मिल, रोशनसिंह, राजेंद्रनाथ लाहिड़ी को फाँसी। शचींद्रनाथ सान्याल को कालापानी की सजा। योगेशचंद्र चटर्जी, मुकंदीलाल, रामकृष्ण खत्री, राजकुमार सिन्हा, सुरेश भट्टाचार्य, विष्णुशरण दुबलिश को दस-दस साल की कैद। बाद में पकड़े जाने पर अशफाक उल्ला को फाँसी और शचींद्रनाथ बख्शी को आजीवन कालापानी की सजा। केशव, मुरारीलाल और चंद्रशेखर आजीवन फरार रहे। शेष लोगों में से मन्मथनाथ गुप्त काकोरी कांड मे शामिल थे, पर उस समय कम उम्र के कारण उन्हें न तो फाँसी दी गई, न आजीवन कालापानी की सजा। उन्हें चौदह साल के कठोर कारावास का दंड मिला। भूपेंद्र सान्याल, प्रेमकृष्ण खन्ना, रामदुलारे त्रिवेदी—इन तीनों को पाँच-पाँच साल की जल। प्रणवेशचंद्र को चार साल जेल और रामनाथ पांडेय को, उनकी कम उम्र के कारण, तीन साल जेल। बनवारी लाल इकबालिया गवाह बन गया था, फिर भी उसे पाँच साल की जेल की सजा दी गई थी; किंतु वह दो साल बाद छूट गया। बाद मे कुछ लोगों की सजाएँ बढ़ाई भी गईं—दस साल की सजा आजीवन कालापानी मे, पाँच व सात साल की सजा दस साल में बदल दी गई थी। पर मन्मथनाथ गुप्त की सजा जज ने यह कहकर बढ़ाने से इनकार कर दिया कि उनकी उम्र बहुत कम है। ये सारी जेल सजाएँ कठोर कारावास की ही थीं, सामान्य नहीं। इस तरह काकोरी के क्रांतिकारियों ने फाँसी व लंबी सजाएँ पाकर भी यह कर दिखाया था कि जनता की सहानुभूति उनके प्रति उमड़ पड़ी थी। शवों के जुलूस में अपार भीड़ और सारे देश से उनकी सजाओं के विरोध में अपीलें। फिर ये शहादतें और कुरबानियाँ ही तो उन्हें स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अमर कर गईं।

☐

जो हमेशा आजाद रहा

वीर चंद्रशेखर

वीर चंद्रशेखर

चंद्रशेखर आजाद क्रांतिकारी इतिहास में एक अमर नाम है, जिन्होंने न केवल क्रांति गतिविधियों में हिस्सा लिया, बल्कि उसमें नेतृत्व की अग्रणी भूमिका भी निभाई। पर यहाँ किशोर क्रांतिकारियों में उनकी गणना इसलिए कि किशोरावस्था से ही उन्होंने वैसे कारनामे कर दिखाए थे, जो सामान्य युवाओं के लिए भी सहज साध्य नहीं होते। प्रस्तुत है एक बानगी—

चंद्रशेखर की उम्र जब चौदह वर्ष की ही थी, वह काशी के राजकीय कॉलेज की सीढ़ियों पर धरना देते पकड़ लिये गए थे। अदालती कार्यवाही के वक्त मजिस्ट्रेट ने पूछा, ''तुम्हारा नाम?''

''आजाद।''

''पिता का नाम?''

''स्वाधीन।''

''निवास?''

''जेलखाना।''

जाहिर है, ब्रिटिश अधिकारी इससे चिढ़ जाते। आजाद को पंद्रह बेंत मारने का दंड दिया गया। पर हर बेंत की मार के साथ बालक चंद्रशेखर दर्द से 'हाय' करने के बजाय जोर से 'वंदेमातरम्' और 'भारत माता की जय' का उद्घोष करते और दंडाधिकारी उनका अभूतपूर्व साहस देखकर दंग रह जाता।

किशोरावस्था में इस तरह की वीरता का परिचय देनेवाले चंद्रशेखर बचपन से ही अपने अनोखे साहस का परिचय देने लगे थे। उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद के 'बदरका' गाँव में जनमे चंद्रशेखर बचपन में मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले के 'भाँवरा' ग्राम के आदिवासी भील बालकों के साथ खेलते थे और उनके साथ जंगल में घूमते हुए वृक्षों पर चढ़ते, तीर चलाना सीखते थे। भीलों के बीच रहते वह भील बच्चों के साथ जंगली खेल खेलते, छोटे-मोटे शिकार करते खूब अच्छा निशाना लगाना सीख गए थे। कहते हैं, उनकी माँ जगरानी देवी ने उन्हें छुटपन में शेरनी का दूध भी पिलाया था, ताकि उनका बच्चा शेर बने, कायर नहीं। शेर जैसी वीरता का परिचय उन्होंने दीवालीवाले दिन भील बालकों को भी दिया, जब मोमबत्ती की लौ में अपना हाथ जला लिया और साथियों के घबराने, मना करने पर भी बार-बार जलाकर दिखाया।

शिक्षा के नाम पर थोड़ी-बहुत शिक्षा उन्होंने काशी विद्यापीठ में ही प्राप्त की, जहाँ उन्हें संस्कृत पढ़ने भेजा गया था। तभी उन्होंने काशी के संस्कृत कॉलेज पर धरना देकर चौदह वर्ष की उम्र में वह कारनामा कर दिखाया था, जिसके लिए उन्हें पंद्रह बेंतों की सजा मिली थी। मन्मथनाथ गुप्त और प्रणवेश चटर्जी तब वहीं पढ़ रहे थे जिनके साथ वह क्रांतिकारियों के संपर्क में आए और फिर दल में शामिल हो गए।

पर चंद्रशेखर जैसा व्यक्ति मात्र दल का सदस्य नहीं हो सकता था। उनमें केवल अद्भुत साहस और वीरता के गुण ही न थे, चरित्रबल, अनुशासन के भी वह कायल थे और उनमें असाधारण संगठन क्षमता भी थी। अपने इन जन्मजात व अर्जित गुणों के कारण उन्होंने क्रांति को नेतृत्व भी प्रदान किया। काकोरी डकैती के

समय उनकी उम्र कम थी, फिर भी वह पकड़ में न आकर फरार हो गए थे। उसके बाद तो बंबई, कानपुर, झाँसी, ओरछा, आगरा, दिल्ली से लाहौर तक क्रांति सूत्र उन्होंने अपने हाथ में ले रखा था और सभी क्रांतिकारियों पर उनके व्यक्तित्व और आदेश का दबदबा रहता था। सरदार भगतसिंह जैसा साथी पाकर चंद्रशेखर बहुत खुश थे। तभी तो 'सांडर्स वध' के बाद उन्होंने भगतसिंह को छुड़ाने की हर योजना का स्वयं नेतृत्व किया। दिल्ली और कानपुर में बम कारखाने चलाए। लाहौर में सांडर्स की मौत के बाद भगतसिंह के साथियों में चंद्रशेखर की भी पुलिस को तलाश थी; पर उनका तो सर्वोपरि गुण था आजाद रहना और आजाद रहकर ही मरना। वह न तो 'लाहौर केस' में पकड़ में आए, न ही 'काकोरी कांड' के बाद। हमेशा फरार व आजाद रहकर क्रांति को नेतृत्व प्रदान करते रहे।

फिर भी २७ फरवरी, १९३१ को एक मुखबिर के विश्वासघात से इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में, जब एक पेड़ के नीचे बैठ सुखदेवराज से संगठन की बात कर रहे थे, पुलिस की एक टुकड़ी से घिर गए। उस संकट के समय भी उन्होंने एक सच्चे नेता की तरह सुखदेवराज को वहाँ से सुरक्षित निकल जाने के लिए कहा और स्वयं अकेले मुकाबला करने लगे। मोरचा सँभाल, उन्होंने पुलिस पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाकर मुठभेड़ में कई पुलिसवालों को मार गिराया। ऐसा कहा जाता है कि जब उनकी पिस्तौल में एक गोली बच गई, तब उसे अपनी कनपटी पर मारकर आजाद की मौत ही मर गए। पर पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट (सही या गलत?) अनुसार आजाद की मृत्यु पुलिस की गोली से हुई थी। उन्होंने कहा था—"दुश्मन की गोलियों का मुकाबला करेंगे, आजाद हैं, आजाद ही रहेंगे।" तभी तो इतिहास उन्हें 'आजाद' के रूप में ही सुरक्षित रखे हुए है। जहाँ उन्होंने अकेले ही एक पूरी सशस्त्र पुलिस टुकड़ी का मुकाबला किया, उस पार्क का नाम भी 'आजाद पार्क' रखा गया है।

उनकी शहादत के तुरंत बाद एक गोरे पुलिस इंस्पेक्टर ने अपनी डायरी में लिखा था—'ऐसा निशानेबाज मैंने अपनी जिंदगी में दूसरा नहीं देखा। अकेला-तनहा एक पेड़ की आड़ में सैकड़ों संगीनधारी पुलिसकर्मियों से घिरकर घंटों मुकाबले में डटे रहनेवाला कोई साधारण इनसान नहीं हो सकता।' और इतनी जबरदस्त मुठभेड़ में मारा जानेवाला वह कोई डाकू या चोर-उचक्का नहीं, भारत माता का एक सच्चा सपूत था, जिसने उसे मुक्त कराने के लिए ही यह सारी साधना की थी कि न तो उसे कोई खोजकर पकड़ सका, न गोली से मारने का श्रेय ही ले सका। वह आजाद था, आजाद रहा और आजाद ही मरा।

☐

काकोरी कांड में चौदह साल की जेल

मन्मथनाथ गुप्त
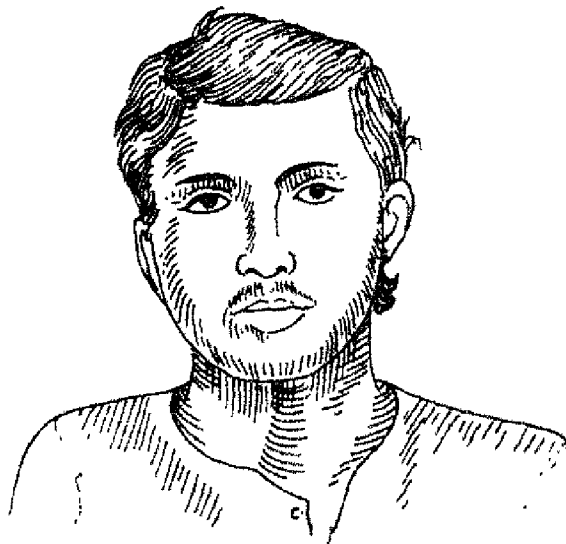
मन्मथनाथ गुप्त

सन् १९२१ में ब्रिटिश युवराज भारत आए थे। मन्मथनाथ की उम्र उस समय केवल चौदह साल की थी, पर उनके बहिष्कार आंदोलन में यह किशोर शामिल हो गया। जगह-जगह धरने, हड़ताल आदि का माहौल था। मन्मथ जब नोटिस बाँटने निकले तो पिता ने टोका—"तुम नोटिस तो बाँटने चले हो, पर इस कारण पुलिस तुम्हें डंडों से पीट सकती है, पकड़कर जेल भेज सकती है। क्या इस उम्र में तुम ये

यातनाएँ सहन कर पाओगे? अच्छी तरह सोच लो।'' मन्मथनाथ का उत्तर था—''बाबूजी, मैं अपनी मातृभूमि के लिए सबकुछ सहने के लिए तैयार हूँ, आप चिंता न करें। आप तो मुझे देशभक्ति की शिक्षा देते हैं और आप ही''' ?'' पिता एक क्षण के लिए चुप हो गए, फिर आज्ञा दे दी। और नोटिस बाँटते हुए मन्मथनाथ पकड लिये गए। उन्हें तीन महीने की जेल हो गई।

पं. वीरेश्वर गुप्त के पुत्र मन्मथनाथ का जन्म ७ फरवरी, १९०८ में बनारस मे हुआ था। पाँच वर्ष की आयु में ही गणित के कठिन प्रश्न हल कर बालक मन्मथ ने अपनी प्रतिभा का परिचय दे दिया था। विद्वान् पिता ने इसीलिए किसी सामान्य स्कूल में प्रवेश न दिला, इनके लिए घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी। एक संन्यासी गुरु के पास संस्कृत पढ़ने के लिए भी भेज दिया। दो साल तक यह अपने पिता के साथ विराटनगर, नेपाल में रहे। वहाँ से आने के बाद इन्हें काशी के गाधी राष्ट्रीय विद्यालय में प्रवेश दिला दिया गया। पिता यहीं शिक्षक थे। हर राष्ट्रीय विद्यालय की तरह उन दिनों यहाँ का वातावरण भी राष्ट्रीय चेतना जगाने व देशभक्ति का पाठ पढ़ानेवाला था। ऐसे घर व विद्यालय के माहौल में मन्मथनाथ राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लिये बिना कैसे रह सकते थे!

असहयोग आंदोलन छिड़ने पर बहिष्कार कार्यक्रम में हिस्सा लेकर तीन महीने की जेल की सजा काट ही चुके थे। काशी विद्यापीठ में 'विशारद' के बाद कॉलेज में पढ़ने लगे थे कि १९२३ में एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी के संपर्क में आए। क्राति साहित्य पढ़ा और बहुत सोच-विचार के बाद उन्हें लगा, इसी रास्ते भारत जल्दी आजाद हो सकेगा। तब वह क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। 'काकोरी काड' के पूर्व ही वे पुलिस की निगाह में आ चुके थे; पर अभी तक किसी आरोप में पकड़े नहीं जा सके थे। फिर काकोरी दल में शामिल हो गए। चूँकि दल में सबसे कम उम्र के यह ही थे, इसलिए इन्हें छेनी-हथौड़ा लेकर साथ चलने के लिए तैयार किया गया था। यात्रियों को चुप कराकर रखने के लिए कुछ साथी क्रांतिकारी तैनात किए गए थे। किसी तरह का खून-खराबा किए बिना केवल क्रांतिकार्य के लिए सरकारी खजाना लूटा जाना था, जिसके लिए जंगल में ट्रेन रोकी गई थी। पर अचानक एक गोली चल जाने से एक यात्री मारा गया था। यह गलती मन्मथनाथ से ही हुई थी; पर इस बात को किसीने किसीपर जाहिर नहीं किया, अन्यथा बहुत संभव था, कम उम्र होने पर भी मन्मथनाथजी को फाँसी हो जाती। इन्हें खुद यकीन था कि फाँसी होगी। इसलिए जेल में जब इनके पिता मिलने आए, (मुकदमे का फैसला अभी नहीं हुआ था) पिता को देखकर मन्मथनाथ की आँखों में आँसू आ

गए थे बाबूजी अब संसार से जाने का समय आ गया है। पर वीर विद्वान् पिता ने कहा मैं अपने बहादुर पुत्र की आँखों मे आसू की अपेक्षा नही करता मन्मथनाथ ने तुरत आसू पोंछ लिये और इस कमजोरी के लिए पिता से क्षमा माँग ली वास्तव मे तब उन्हे मालूम ही नहीं था कि उन्हे फाँसी नहीं होगी.

काकोरी मुकदमे में अनेक साथियों को फाँसी की सजा हुई। पर कम उम्र के कारण इन्हें चौदह साल की कठोर कैद की सजा दी गई। पुलिस ने इन्हे खतरनाक की श्रेणी में रख रखा था, इसलिए सजा बढ़वाने के लिए अपील की गई, पर सेशंस से न सजा बढ़ाई गई, न कालापानी ही भेजा गया, न फाँसी ही दी गई। बस चौदह साल की लंबी व कठोर कैद की सजा ही इनके लिए उपयुक्त समझी गई। यद्यपि उससे पूर्व खुदीराम बोस जैसे अनेक क्रांतिकारी किशोरों को फाँसियाँ दी गई थीं; पर क्रांति के इस दूसरे दौर तक आते-आते स्थिति बदल चुकी थी। अब बीस से कम उम्र में फाँसी न देने की ही सामान्य नीति थी और मन्मथनाथ की उम्र निर्धारित उम्र से कम थी।

उस समय शायद इन्हें फाँसी न दिए जाने का पछतावा न रहा हो, पर एक वयोवृद्ध प्रतिष्ठित लेखक के रूप में जब इन्हें 'स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती' पर सद्भावना यात्रा को रवाना करने से पूर्व अपने उद्‌गार प्रकट करने का अवसर मिला तो इन्होंने कहा, ''काश! मेरी उम्र तब छह महीने कम न रही होती और मुझे मेरे अन्य साथियों के साथ फाँसी दे दी गई होती तो आज देश की वर्तमान हालत देखने के लिए तो जिंदा न होता।'' सचमुच मूल्यों और विचारधाराओं को लेकर उस समय जो लोग देश पर जानें न्योछावर करने के लिए कमर कसे थे और देशकार्य के लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार थे, उनकी मानसिकता आज की स्थिति को झेलने के लिए इतने वर्षों बाद भी तैयार नहीं हो सकी है। किसी भी स्वतंत्रता सेनानी से पूछिए, चाहे वह क्रांतिकारी रहा हो या गांधीवादी अहिंसक, (रास्ते जाते तो एक ही मंजिल की ओर थे!) वह कहेगा—''क्या-क्या सपने देखे थे आजाद भारत के, सब चूर हो गए। जिस मनुष्य की आजादी और तरक्की के लिए हम लड़े, आज देश में जिसके लिए सारी प्रगति योजनाएँ हैं, उसके भीतर की मनुष्यता ही नहीं बची, तो सब किसलिए?''

जेल में मानवतावादी मूल्यों की स्थापना के लिए दो बार अनशन करनेवाले मन्मथनाथ गुप्त आज भी अपनी कलम द्वारा उन मूल्यों के लिए लड़ रहे हैं।

□

भाग–३

(क्रांति का तृतीय दौर)

द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस

भगतसिंह के किशोर-नवयुवक साथी

भगतसिंह

पूर्वोत्तर भारत में सूर्यसेन और पश्चिमोत्तर भारत में सरदार भगतसिंह क्रांतिकारी आंदोलनों के प्रमुख नेता माने जाते हैं। यद्यपि क्रांतियज्ञ में हजारों हजार प्राणों ने आहुति दी; पर भगतसिंह, बिस्मिल एवं सूर्यसेन आजादी के अपने सपनों के भावी भारत के भविष्य को लेकर अपनी सुनिश्चित विचारधाराओं के कारण और अपने पीछे बहुसंख्य किशोर-युवा क्रांतिकारियों को लाने तथा आम जनता की सहानुभूति

अर्जित करने के कारण भी जहां बहुप्रचारित हुए, वहां चंद्रशेखर आजाद अनेक प्रमुख एक्शनों के अगुआ होकर भी कभी ब्रिटिश पुलिस, सेना या प्रशासन की पकड़ में न आनेवाले एक अजेय व आजाद योद्धा होने के कारण। ये सभी क्रांति नेता अपनी शहादतों की प्रमुख भूमिका में किशोर नहीं, नवयुवक व युवक थे; पर इन्होंने अपना कार्य किशोरावस्था में ही आरंभ कर दिया था। साथ ही ये अपने साथ जितनी संख्या में अल्प वय लड़के-लड़कियों को ले सके, उस कारण भी इनका अलग से उल्लेख आवश्यक है—बिस्मिल का 'काकोरी कांड' के नेता, भगतसिंह का 'लाहौर व दिल्ली असेंबली केस' के नेता और सूर्यसेन का 'चटगाँव शस्त्राकांड' के नेता के रूप में; क्योंकि इन वारदातों का दूरगामी एवं व्यापक प्रभाव रहा।

स्वतंत्रता सेनानी सरदार किशनसिंह के पुत्र और सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी अजीत सिंह के भतीजे भगतसिंह ने बचपन से ही इस ओर अपना झुकाव प्रदर्शित कर दिया था। एक बार इनके घर आए एक मेहमान ने बालक भगतसिंह से पूछा "तुम क्या करते हो?" भगतसिंह ने तपाक से जवाब दिया, "खेती करता हूँ, बंदूकों की खेती। अनाज तो सब जगह होता है, फिर भी लोग वही बोते हैं। कोई भी किसान बंदूकों की खेती क्यों नहीं करता? मैं करूँगा।" और बच्चे के पिता ने मेहमान को बताया कि कल खेत में इसे एक डंडी गाड़ते हुए देख मैंने पूछा तो बोला, "बंदूक, तलवार बो रहा हूँ; ताकि उगने पर हमें कई मिल सकें।" सब लोग बालक की भोली बात पर हँस दिए। तब भला उन्हें क्या पता था कि यह बच्चा बड़ा होकर क्या करेगा!

कॉलेज जाकर भगतसिंह का परिचय भगवतीचरण, सुखदेव, यशपाल आदि से हुआ। आगरा निवासी भगवतीचरण बोहरा के पिता इनके लिए बड़ी जायदाद छोड़ गए थे। कम उम्र में ही इनकी शादी दुर्गा देवी से हुई, जो बाद में सभी क्रांतिकारियों की दुर्गा भाभी बन गईं। जिस तरह इनका घर सभी क्रांतिकारियों के लिए खुला था, इसी तरह इनका पैसा भी क्रांतिकारी काम में आ रहा था।

एफ.ए. पास करने के बाद भगतसिंह की शादी की बात घर में उठी तो वे विवाह से बचने के लिए घर से भाग गए। दिल्ली जाकर पहले 'अर्जुन' पत्र के संवाददाता का काम किया, फिर कानपुर जाकर 'प्रताप' में काम करने लगे। माँ की बीमारी का तार देकर वहीं से पिता ने घर बुलवाया। तब इनकी माँ ने कह दिया, 'इसकी जबरदस्ती शादी मत करो, देशसेवा की इसकी मरजी है तो इसे वही करने दो। यही गुरु महाराज की इच्छा है तो हम कौन होते हैं उसमें बाधा डालनेवाले!' ऐसी थीं इनकी माँ विद्यावती, जिन्हें बाद में 'पंजाब माता' का खिताब मिला।

हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी के अच्छे जानकार व विचारक भगतसिंह ने छोटी उम्र से ही सबको प्रभावित कर लिया था। लायलपुर में उन्होंने एक व्याख्यान दिया और उसमें टेगर्ड हत्याकांड से जुड़े गोपीमोहन साहा की तारीफ कर दी, तो उनपर मुकदमा चलाया गया। पर मुकदमा आगे नहीं बढ़ पाया और वे छूट गए। इस बीच उन्होंने 'कीर्ति' और 'अकाली' नामक पत्रों का भी संपादन किया। 'काकोरी काड' के बाद व्यापक धर-पकड़ से दल के छिन्न-भिन्न हो जाने की पीड़ा को अंतर मे समेटे आजाद ने पंजाब के क्रांतिकारियों के साथ कार्य को आगे बढ़ाने के बारे में सोचा। इधर भगतसिंह और सुखदेव सक्रिय हो ही गए थे। यशपाल और जयगोपाल भी आ मिले। बिहार से फणींद्र घोष, कमलनाथ तिवारी भी आ गए। भगतसिंह ने आजाद आदि साथियों के साथ काकोरी कैदियों को हवालात से छुड़ाने की योजना बनाई; पर उस अभियान में सफलता नहीं मिली।

अक्तूबर १९२६ में दशहरे पर बम फटने को लेकर भी भगतसिंह पर मुकदमा चलाया गया; पर वे अदालत से छूट गए। अब उन्होंने पंजाब, उत्तर प्रदेश व बिहार के संगठनों को जोड़कर 'भारत नौजवान सभा' बनाई। दिसंबर १९२७ में सारे देश के क्रांतिकारियों को संगठित करने के लिए एक सभा बुलाई गई और चद्रशेखर आजाद, भगतसिंह, सुखदेव, विजय कुमार, शिव वर्मा, कुंदन लाल, फणींद्र घोष—इन सात सदस्यों की एक कार्यकारिणी या केंद्रीय समिति बनाई गई। सुखदेव और भगतसिंह पंजाब के, विजय कुमार और शिव वर्मा उत्तर प्रदेश के सगठनकर्ता चुने गए और चंद्रशेखर आजाद सारे दल के अध्यक्ष तथा सेना प्रमुख। दल का नाम 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' कर दिया गया। पूर्व नाम में 'सोशलिस्ट' शब्द जोड़ने के पीछे भावी भारत के लिए यह भगतसिंह की सोच थी।

दल की ओर से लाहौर, आगरा, सहारनपुर, कलकत्ता में बम कारखाने खोले गए, जिनमें से लाहौर व सहारनपुरवाले कारखाने बाद में पकड़े गए थे। बम बनाना सीखने के लिए यतींद्र दास को बंगाल से लाया गया था। तभी देश में ऐसी घटना घटी कि दल की पंजाब शाखा को एक 'एक्शन' करना पड़ा। उन्हीं दिनो १९२८ में संविधान संशोधन कार्यक्रम का प्रस्ताव लेकर ब्रिटेन से 'साइमन कमीशन' भारत आया था। कमीशन में सभी सदस्य अंग्रेज थे और कार्य-प्रणाली भी स्वीकार योग्य न थी, अत: लगभग सभी नेताओं ने कमीशन का बहिष्कार करने का निर्णय लिया। जगह-जगह 'साइमन लौट जाओ' के नारों व काले झंडों के साथ जुलूस निकाले गए। सात-आठ साल की बच्ची के रूप में पेशावर में ऐसा एक जुलूस देखने की स्मृति मेरे मस्तिष्क में आज भी ताजा है। लखनऊ में जवाहरलाल नेहरू

और गोविंद बल्लभ पंत पर भी एक जुलूस में लाठियां पड़ी थी तभी लाहौर में ३० अक्तूबर १९२८ को बायकाट जुलूस पर लाठी चार्ज में पंजाब के वरिष्ठ नेता लाला लाजपतराय बुरी तरह घायल हो गए थे, जिस कारण १७ नवंबर को अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गई। भगतसिंह के दल ने लाला लाजपतराय की मौत का बदला लेने की योजना बना ली। तदनुसार टोह लगाकर लालाजी की मौत के जिम्मेदार पुलिस अफसर सांडर्स को १५ दिसंबर को मार डाला गया।

सांडर्स वध की इस योजना में भगतसिंह, आजाद, शिवराम, राजगुरु जयगोपाल शामिल थे। पहली गोली राजगुरु ने चलाई, निशाना अचूक था, सांडर्स मोटर साइकिल सहित नीचे जमीन पर आ गिरा। फिर भगतसिंह ने एक साथ कई गोलियाँ चलाकर उसका काम तमाम कर दिया। पीछे की सुरक्षा पंक्ति में छुपे चद्रशेखर आजाद ने दोनों सुरक्षा कर्मचारियों को मार डाला। इसके बाद चारों वहाँ से बचकर भाग निकले। पहले डी.ए.वी. कॉलेज के प्रांगण में शरण ली, फिर लाहौर से भी सुरक्षित निकल गए, जिसकी रोमांचक कहानी आज लगभग सभी देशवासी जानते हैं। भगतसिंह केश कटवाकर, हैट लगाए, सूटेड-बूटेड तथा बालक शची को गोद में उठाए अंग्रेज महिला की पोशाक पहने दुर्गा भाभी के साथ रेल में सफर करते हुए, युवा अंग्रेज दंपती के रूप में कलकत्ता जा निकले। राजगुरु उनके अर्दली बन गए थे। आजाद तीर्थयात्रियों की टोली बनाकर कुछ साथियों को देहाती बना, स्वयं पंडा बनकर लाहौर से निकल गए। आगरा व मथुरा से ये लोग अलग हो गए।

भगतसिंह की एक साथिन सुशीला दीदी ने कलकत्ता में भगतसिंह को ठहराया, दुर्गा भाभी उन्हें पहुँचाकर लौट आईं। पर भगतसिंह अधिक दिनों तक चुप नहीं रह सकते थे। अब उन्होंने दिल्ली केंद्रीय असेंबली में उस समय बम का धमाका करने की योजना बनाई, जब वहाँ 'पब्लिक सेफ्टी बिल' और 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' जैसे जन-विरोधी बिल पास किए जा रहे थे। पहले आगरा में एक बम कारखाना खोला गया, जिससे यशपाल, किशोरीलाल और भगवतीचरण जुड़े थे। दल की राय में, भगतसिंह पर चूँकि सांडर्स वध का केस था, अतः भगतसिंह रूस निकल जाएँ और सुखदेव तथा बटुकेश्वर दत्त असेंबली में बम फेंकें; पर भगतसिंह नहीं माने। उन्होंने कहा, 'मैं बम फेंकने के बाद आत्मसमर्पण कर दूँगा और लड़ूँगा।' अन्य सदस्यों को भी लगा, केस भगतसिंह जैसा आदमी ही लड़ सकेगा, क्योंकि उनमें अदालत में अच्छे वक्तव्य देने की योग्यता थी। अंत में दल के आदर्श, सिद्धांत, उद्देश्य व बम बिस्फोट के राजनीतिक महत्त्व को जनता के सामने

अच्छा तरह रखने क लिए भगतसिह के नाम पर सहमति हो गई कि नियत समय पर भगतसिंह व बटुकेश्वर दत्त असेंबली में बम फेंकेंगे तथा आजाद कुछ साथियो के साथ जाकर उन्हें बचा लाएँगे। पर भगतसिंह ने बचा लाने की योजना को भी खारिज कर दिया कि इसमें साथियों के लिए खतरा था और वे स्वयं ही यह खतरा उठाना या यों कहें, 'मोल' लेना चाहते थे।

८ अप्रैल, १९२९। असेंबली में 'ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' बहुमत से पास हो चुका था और 'पब्लिक सेफ्टी बिल' निर्णय की प्रतीक्षा में था कि ऊपर गैलरी से एक बम आकर फटा। एक धमाके के साथ हाल में धुआँ फैल गया। कोई व्यक्ति मरा नहीं। मारना इनका उद्देश्य था भी नहीं, इसलिए बम किसीको लक्ष्य करके नहीं फेंका गया था। इसके बाद दोनों ने भागने की भी कोई कोशिश नहीं की। योजनानुसार दोनों ने 'इनकलाब जिंदाबाद', 'साम्राज्यवाद का नाश हो' नारे लगाए और एक परचा निकालकर वहाँ बिखरा दिया, जिसमें लिखा था—'यह विस्फोट किसीको मारने के लिए नहीं, केवल बहरों को सुनाने के लिए एक धमाका है।' ठीक उसी तरह जैसे सांडर्स के वध के बाद दीवारों पर रातोरात पोस्टर चिपकवा दिए गए थे कि 'यह लाला लाजपतराय की मौत का बदला है।' भगतसिंह व बटुकेश्वर दत्त दोनों पकड़ लिये गए। दिल्ली जेल में उन्हें डराया-धमकाया गया, मुखबिर बनने के लिए प्रलोभन भी दिए गए; पर वे अटल रहे। जेल में मुकदमा ७ मई को शुरू हो, १२ जून तक चला। इस तरह मुकदमा सेशन में समाप्त हुआ। पर सरकार को 'सांडर्स केस' में भगतसिंह व साथियों की तलाश थी। इसलिए १ मई, १९३० को एक 'ऑर्डीनेंस' निकालकर, मुकदमा मजिस्ट्रेट के पास से हटाकर तीन जजों के एक 'ट्रिब्यूनल' में चला दिया गया। इस अदालत को यह अधिकार था कि अभियुक्तों की गैरहाजिरी में भी मुकदमा चलाया जाए; क्योंकि सरकार जानती थी कि ये लोग अदालत को सहयोग नहीं करेंगे।

सांडर्स केस में इस बीच अभियुक्तों की खोज तथा मुखबिरों की मदद से गिरफ्तारियों का ताँता लग गया था। सबसे पहले गिरफ्तार दो छात्रों ने यातनाओं के आतंक में बता दिया कि भगतसिंह का सांडर्स वध में हाथ था और भगवतीचरण व आजाद प्रमुख क्रांतिकारी नेता थे। १५ अप्रैल को एक मकान पर छापा मारकर सुखदेव, किशोरीलाल व जयगोपाल पकड़ लिये गए। २३ मई को सहारनपुर से शिव वर्मा और जयदेव गिरफ्तार कर लिये गए। हंसराज बोहरा और जयगोपाल मुखबिर बन गए। बाद में फणींद्र घोष की मुखबिरी ने तो सारे जाल के सूत्र पकड़वा दिए। भागे हुए लोगों में से विजय कुमार बरेली से, राजगुरु पूना से, कुंदनलाल भी

उत्तर प्रदेश की किसी जगह से गिरफ्तार कर लिये गए कुल सोलह क्रांतिवीरों पर मुकदमा चला; जिनमें से सुखदेव, राजगुरु, भगतसिंह को फाँसी की सजा सुनाई गई। शेष साथियों में से बटुकेश्वर दत्त, विजय कुमार, किशोरीलाल, महावीरसिंह, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, जयदेव, कमलानाथ त्रिवेदी को आजीवन कालापानी की सजा दी गई तथा कुंदनलाल को सात वर्ष जेल और प्रेमदत्त को तीन वर्ष जेल की।

भगतसिंह आदि को फाँसी न दी जाए, इसके लिए ११ फरवरी, १९३१ को प्रिवी काउंसिल में भी अपील की गई; पर खारिज हो गई। दरअसल भगतसिंह के बयानों ने पंजाब के ही नहीं, सारे देश के जनमानस में इनके लिए सहानुभूति जगा दी थी। जनता जान गई थी कि इन नौजवानों ने देश को आजाद कराने की कीमत अपनी जान पर खेलकर चुकाई है और इन्हें आतंकवादी कहने का अंग्रेज सरकार का प्रचार झूठा है। प्रथम मुकदमे के दौरान ६ जून को अदालत में भगतसिंह का बयान था—''हम भारतीय प्राणिमात्र को आदर व दया की दृष्टि से देखते हैं। हमे किसीसे व्यक्तिगत द्वेष या दुश्मनी नहीं है। मानवोचित आकांक्षाओं के मननशील विद्यार्थी के नाते हमारा उद्देश्य मानवता विरोधी उस शासन के विरुद्ध प्रतिवाद प्रकट करना है, जिसके काम से अपकार की क्षमता ही प्रकट होती है। आक्रामक उद्देश्य से बल का प्रयोग हिंसा कहलाता है। जब उसका उपयोग गैर जिम्मेदार, निरकुश व जुल्मी शासन के खिलाफ वैध आदर्श के लिए किया जाता है तो उस हिसा का नैतिक औचित्य होता है।''

मुझे याद है, जब तक यह ऐतिहासिक मुकदमा चलता रहा, सारे देश मे किस तरह इनके प्रति सहानुभूति की लहर चल रही थी। किस तरह इनके दल के लडके-लड़कियाँ और इनके फरार साथी इन्हें छुड़वाने की कोशिश कर रहे थे—'गांधी-इरविन समझौते' में इनकी फाँसी की सजा रद्द करवाने की शर्त जुड़वाने से लेकर, सशस्त्र संघर्ष द्वारा इन्हें जेल से बचा लाने तक। पर हर कोशिश नाकाम रही और अंतत: २३ मार्च, १९३१ को भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव को जनता के रोष के डर से निर्धारित सुबह के समय से पहले रात को ही चुपचाप फाँसी पर लटका दिया गया। यही नहीं, उनका दाह-संस्कार भी कर, फूल सतलुज में डाल दिए गए। बाहर सारी जनता 'भगतसिंह जिंदाबाद', 'इनकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाती, शवों की प्रतीक्षा में आँखें बिछाए रही। अंग्रेज सरकार ने इस प्रकार उनकी शहादत को अंतिम आदर से भी वंचित कर दिया। पर उससे क्या! तीनों शहीदों की समाधियों पर आज भी जनता अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करती है और उन दिनों इनकी याद में घर-घर जो मार्मिक गीत गाए जाते थे, उनकी याद आज भी हमारे बुजुर्गों के दिलों में ताजा

ह यह याद ताजा रहे इसके लिए जब्तशुदा गीतो व विलुप्त गीतो को खोजकर उनके संकलन प्रकाशित किए जा रहे हैं।

भगतसिंह व उनके दल के साथियों में जो नाम प्रसिद्ध हैं, उनमें से यतींद्र दास की जेल में अनशन करते १३ सितंबर को मृत्यु हो गई (कैदियों को राजनीतिक कैदियों का दर्जा दिलाने के लिए भगतसिंह व साथियों ने भूख हड़ताल की थी, जिन्हें जबरन पकड़कर नलियों से खाना पेट में पहुँचाने की कोशिशें की गई थीं)। यतींद्र की मौत पर जनता भड़के नहीं, इसलिए शव नहीं दिया जा रहा था। नेताजी सुभाषचंद्र बोस के हस्तक्षेप से शव कलकत्ता भेजा जा सका। फिर तो रास्ते भर व कलकत्ता में जन-समुदाय ने उमड़कर शहीद का ऐसा स्वागत किया कि सरकार अपना सा मुँह लेकर देखती रह गई।

भगवतीचरण बोहरा की एक बम परीक्षण के समय मौत हो गई थी, इसके पूर्व वे फरार थे। आजाद अंत तक फरार रहे। फिर धोखे से इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में पुलिस द्वारा घेर लिये गए। वहीं लड़ते हुए जब उनकी पिस्तौल की गोलियाँ समाप्त हो गईं तो उन्होंने अंतिम गोली अपनी कनपटी में मार आत्महत्या कर ली थी। इस तरह २७ फरवरी, १९३१ को अपनी आखिरी साँस तक आजाद आजाद ही रहे, न कभी पकड़े गए, न जेल ही भेजे गए। आजाद की लाश भी जनता को नही दी गई। पर लोगों ने उस पेड़ की भी पूजा शुरू कर दी, जिसकी आड़ लेकर आजाद ने निशानेबाजी की थी। ऐसे ही नहीं कहा गया है—'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले'। वे आज भी लग रहे हैं। आजादी के इतिहास में ये नाम अमर है, अमर रहेंगे।

भगतसिंह व आजाद के इन साथियों में भी आधी से ज्यादा संख्या में बीस वर्ष से कम उम्र के लड़के-लड़कियाँ थे। दुर्गा भाभी जब ब्याहकर आईं और पति भगवतीचरण के साथ क्रांति गतिविधियों में लग गईं, वह कम उम्र की किशोरी ही थी। शेष लड़कियों—जनक, श्यामा, लीला, शांता, शिवा आदि, जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कई रूपों में भाग लिया, में से मुख्य 'एक्शनों' की भागीदार सुशीला दीदी, प्रकाशो, मनमोहिनी जुत्शी का संक्षिप्त परिचय अलग से दिया जा रहा है। भाभी तो पूरे समय सबकी संरक्षिका व सहायिका बनकर उनके काम आती रहीं। फिर बम फैक्टरी में विस्फोट के बाद तो वे और सुशीला दीदी मारी-मारी फिरीं। तभी सामने आईं, जब उनके नाम के वारंटों की अवधि समाप्त हो गई। यशपाल, अज्ञेय जैसे बाद में साहित्यकार के रूप में सुस्थापित युवा भी इसी दल के साथ थे। इन्हें भी जेल की लंबी सजाएँ दी गई थीं। सुखदेवराज, धनवंतरि, वैशंपायन आदि कुछ

साथी बाद मे पकडे गए थ जगदीश मुठभेड मे मारे गए शालिग्राम शुक्ल भी इसी तरह शहीद हुए आजाद के साथियों में स कुछ युवक युवतियाँ बनारस मे भी पकडे गए थे सभा के नाम यहाँ गिनाना भी सभव नहीं

इस तरह 'द्वितीय लाहौर षड्यंत्र केस' के नाम से जाना जानेवाला यह मुकदमा तीन साल तक चलकर १३ सितंबर, १९३३ को जाकर समाप्त हुआ था। इस दौरान लंबी जेलयात्राओं व शहादतों में किशोरों तथा नवयुवकों की व्यापक भागीदारी रही। पीछे से मदद करने और इधर-उधर बदले की कार्यवाहियों में किए गए गोलीकांडों की धर-पकड़ में ये लोग बहुत अधिक संख्या में जेल-सजाओं व यातनाओं के शिकार हुए। इस अज्ञात संख्या का कोई हिसाब नहीं। इसके पूर्व कि पुरानी पीढ़ी के साथ ये यादें भी समाप्त हो जाएँ (हो ही रही हैं), संबंधित क्षेत्रों में सरकारी साधनों तथा समर्पित कार्यकर्ताओं के माध्यम से व्यापक खोज होनी चाहिए और इस कार्य के लिए विश्वविद्यालयों को भी आगे आना चाहिए।

□

भगतसिंह दल की सहायक

सुशीला

सुशीला

सुशीला अपनी बी.ए. की परीक्षा दे रही थी कि 'काकोरी केस' के क्रांतिकारियों को फाँसी दिए जाने की खबर आई और सुशीला परीक्षा भवन में बेहोश हो गई। इसके पूर्व उसने अपनी प्रिंसिपल के पास अपनी स्वर्गीय माँ द्वारा उसकी शादी के लिए रख छोड़ा दस तोला सोना उठाकर दान में दे दिया था; क्योंकि उनका केस लड़ने के लिए क्रांतिकारी साथियों को धन की आवश्यकता थी। उन्हें फाँसी व

आजीवन कालापानी की सजाओं से बचाने का प्रिवी काउंसिल तक भेजी गई सारी अपीलें व्यर्थ गई थीं सुशीला द्वारा दिया गया सोना भी उस काम नहीं आया इस आघात से ही यह लड़की परीक्षा हॉल में बेहोश हो गई थी और उस दिन उसका परचा रह गया था।

इस घटना से सिद्ध है कि सुशीला नाम की यह लड़की, जो बाद मे भगतसिंह दल की एक प्रमुख क्रांतिकारी सुशीला दीदी के नाम से प्रसिद्ध हुई, ने बहुत छोटी उम्र से क्रांतिकार्य शुरू कर दिया था। इस घटना से पूर्व जब देहरादून के हिंदी साहित्य सम्मेलन में भाग लेने जालंधर कन्या विद्यालय की, सुशीला सहित, कुछ छात्राएँ गई थीं, वहीं सम्मेलन में नेशनल स्कूल, लाहौर से आए छात्रों से उनकी भेंट हुई थी। सरदार भगतसिंह, सहपाठिनी लीला (जो बाद में क्रांतिकार्य मे भी इनकी सहकर्मी बनी) के भाई बलदेव, भगवतीचरण बोहरा और दुर्गा भाभी भी वहीं मिले थे। वहाँ से लौटकर सुशीला एवं लीला ने एक गुप्त परचा वितरित किया और डाक से अधिकारियों के पास भी भेज दिया था। उस परचे से बड़ी सनसनी फैली थी; पर यह किसीको पता नहीं चल सका कि इसके पीछे इन दोनों छात्राओं का हाथ था।

क्रांतिकारियों की हर गतिविधि में साथ देनेवाली और इसके लिए बड़े-से बड़ा जोखिम उठानेवाली सुशीला ने आगे देश की आजादी तक न जाने कितने गुप्त काम कर दिखाए थे, जिनसे सनसनी फैली; पर वह कभी पकड़ में नहीं आई। दुर्गा भाभी के साथ उनका संबंध कैसे बना, इसकी भी एक कहानी है। सुशीला की माँ उन्हें बचपन में छोड़कर चल बसी थीं। पिता देशभक्त होने पर भी जब तक सेना की नौकरी में रहे, छुट्टियों में भी अपने बच्चों को घर पर नहीं बुला पाते थे। छोटे भाई-बहनों को पहले सुशीला ने पाला, फिर जो स्कूल जाने लायक हुआ, उसे राष्ट्रीयतावादी लोगों के लिए खुले 'नेशनल स्कूल' में भेज दिया जाता। 'जालंधर कन्या विद्यालय' भी ऐसे ही परिवारों की लड़कियों के लिए आवासीय स्कूल था। दोनों छोटे भाई जब नेशनल स्कूल के हॉस्टल में चले गए, तब सुशीला भी, अपनी छोटी बहन शांता के साथ, जालंधर कन्या विद्यालय में पहुँच गई। चूँकि ये छात्राएँ वहाँ पढ़ाई के साथ देशकार्य के लिए भी दीक्षित हो रही थीं, इसलिए छुट्टियों में घर भी नहीं जा सकती थीं कि कहीं पिता की नौकरी पर आँच न आए। सुशीला अपनी बहन के साथ छुट्टियों में दुर्गा भाभी के घर रहने चली जाती थीं। स्कूल की प्राचार्या कुमारी लज्जावती ने इनकी वहीं व्यवस्था करवा दी थी। सुशीला का सोना भी इन लज्जावती के पास ही रखा था, जो बाद में 'काकोरी केस' लड़ने के लिए दे दिया

गया। कुमारी लज्जावती जब नौकरी छोड़ लाला लाजपतराय के साथ स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने चली गईं, तो नई प्राचार्या शन्नो देवी भी छात्राओं को क्रांतिकार्य में उसी तरह दीक्षित करने लगी थीं। सुशीला पर इन दोनों प्राचार्या का विशेष वरदहस्त रहा, क्योंकि सुशीला ने निचली कक्षाओं से ही अपनी देशभक्ति का परिचय दे दिया था।

'साइमन कमीशन' के विरोध में जब लाला लाजपतराय को चोटें आईं और इसी कारण बाद में उनकी मृत्यु हो गई, तो सुशीला की पंजाबी कविता 'गया ब्याहन आजादी लाडा भारत दा' ने बहुत प्रेरणा जगाई थी और भगतसिंह व साथी उनकी मौत का बदला लेने के लिए 'सांडर्स वध' जैसा कांड कर बैठे थे। इस बीच बी ए करने के बाद सुशीला दीदी एक सेठ की लड़की को पढ़ाने आवासीय शिक्षिका बन कलकत्ता पहुँच गई थीं। फिर सांडर्स को मारने के बाद जब दुर्गा भाभी भगतसिंह को छद्मवेश में निकाल कलकत्ता ले गई थीं, तब सुशीला दीदी ने ही उन्हें अपने पास ठहराया था। असेंबली में बम फेंके जाने के बाद—भगतसिंह को जेल में राखी भेजने के साथ—सुशीला ने जो पत्र उन्हें लिखा था, उसके प्रकाशन पर संपादक को छह साल की जेल हो गई थी।

दिल्ली में वायसराय की ट्रेन को उड़ाने की जब योजना बनी तब उस ट्रेन की भीतर से जाँच करने के लिए भगवतीचरण ने सुशीला को ही कलकत्ता से बुलवाया था और यूरोपीय लेडी के वेश में इस कार्य को बखूबी अंजाम देकर सुशीला कलकत्ता लौट गई थीं, ताकि पहचानी न जाएँ। कश्मीर बिल्डिंग में अन्य साथियों के साथ सुशीला सिख लड़के के वेश में बम बना रही थीं। जब वहाँ बम फटने से एकदम सबको भागना पड़ा था, तब सुशीला चंद्रशेखर आजाद को बचाकर अपनी सहेली सत्यवती के घर ले गई थीं। फिर स्वयं का वारंट निकलने पर फरार हो गई थीं।

फरारी जीवन में ही उन्होंने दिल्ली में प्रतिबंधित कांग्रेस में भाग लिया। चाँदनी चौक में घोड़ों की टाप के नीचे से निकल, पानी की हौदी पर चढ़, जुलूस को संबोधित किया और 'इंदु' नाम से गिरफ्तार हो छह महीने की जेल भी काट आई थीं; पर किसीको शक नहीं होने दिया कि यह इंदु नहीं, सुशीला दीदी हैं। इन क्रांतिकार्यों के लिए सुशीला दीदी कलकत्ता की अपनी नौकरी भी छोड़ आई थीं। दुर्गा भाभी की तरह वह भी यहाँ-वहाँ छिपती-भटकती फिरी थीं; पर वारंट की अवधि समाप्त होने तक पकड़ में नहीं आई थीं।

ऐसी कितनी ही सनसनीखेज व जोखिम भरी घटनाओं से भरा था उनका

क्रांतिकारी जीवन भगतसिंह व साथियों को जेल से छुड़ाने के लिए भी उन्होंने क्या कुछ नहीं किया! केस लड़ने के लिए कलकत्ता में नाटक खेलकर भी धन एकत्रित किया। गांधीजी से भी मिलीं। जब कुछ नहीं हुआ, तब वह खिन्न हो गई थीं। भगवतीचरण एक बम का परीक्षण करते जब उसकी चपेट में आ असमय काल-कवलित हो गए तो दुर्गा भाभी का सहारा बन उन्होंने उनके हर कदम में साथ दिया। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु जैसे साथियों को फाँसी दिए जाने पर, चंद्रशेखर आजाद के भी इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में मुठभेड़ में लड़ते हुए शहीद हो जाने पर वह फूट-फूटकर रोई थीं। फिर भी उन्होंने क्रांतिकार्य से मुख नहीं मोड़ा था। अपनी शादी भी तभी की, जब उनके खिलाफ वारंट की अवधि समाप्त हो गई।

आजादी के बाद दिल्ली में बसकर वह कांग्रेस कार्य व समाजसेवा को समर्पित हो गईं। पर दुर्गा भाभी के साथ जुड़ी सुशीला दीदी को लोग न जाने क्यों भूल गए! इस कदर कि दिल्ली की गलियों में महीनों भटककर मुझे उन्हें खोजना पड़ा था; जबकि दिल्ली में उनका एक 'स्टैच्यू' भी लगा है और पुरानी दिल्ली में उनके नाम पर एक गली का नाम भी रखा गया है। बाद में तो कलकत्ता में उनके साथी रहे सत्यदेव विद्यालंकार की लिखी उनकी जीवनी पुस्तक भी मुझे मिली और उनपर विस्तृत लेख लिखकर मैंने उन्हें फिर से सामने लाने का प्रयत्न किया। कारण यही कि उस समय के लोग केवल कुरबानियाँ करना ही जानते थे, स्वयं को प्रकाश में लाना नहीं।

□

यशपाल की साथिन

प्रकाशो

प्रकाशो

प्रसिद्ध क्रांतिकारी यशपाल की साथिन (बाद में पत्नी) प्रकाशो की गणना भी उन क्रांतिकारियों में है, जिन्होंने देश को आजाद कराने में अपने जीवन के अनेक बहुमूल्य वर्ष खर्च कर दिए। अपने लक्ष्य को पाने के लिए तरह-तरह के संकटों का सामना किया, जोखिम उठाए और लक्ष्यसिद्धि के बाद ही सामान्य जिंदगी को अपनाया।

क्रांतिकारी गतिविधियों से प्रकाशो का परिचय स्कूली जीवन से ही हो गया

था लाहौर में जब विदेशी कपडो का होली जलाई गई तब इसका खबर मिलते ही उन्होंने अपने गोटे-किनारीवाले महँगे विदेशी कपड़ों की पोशाकें होली में जला दी थी और लाहौर कांग्रेस में 'वालंटियर' बनकर पहुँच गई थीं। उम्र का जोश, कच्ची किशोर समझ, पर कुछ करने की ऐसी व्यग्रता कि कब अवसर मिले और वह क्राति में भाग लेना शुरू करें!

'चाह को राह' मिलती ही है। लाहौर कांग्रेस के समय मनमोहिनी जुत्शी लडकियों के 'वालंटियर ग्रुप' की इंचार्ज थीं। ट्रेनिंग के लिए रोज माल रोड पर जाना पड़ता था। मनमोहिनी की बहन श्यामा और नेशनल स्कूल, जालंधर की प्रिंसिपल कुमारी लज्जावती की छोटी बहन शिवा भी साथ थीं। उन्होंने भगतसिंह व साथियों से उन्हें मिलवाया। क्रांतिकारी पार्टी में घर रहकर आर्थिक सहायता देना या घर छोड़कर पार्टी का काम करना, ऐसी समर्पित लड़कियों की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी और इस बाबत उनसे पूछा जा रहा था। प्रकाशो घर से समृद्ध थी तो पहले कभी पूछकर, कभी चुराकर भी धन से क्रांतिकारियों की मदद करती रही थी। फिर एक दिन उनका सामना यशपाल से हुआ। यशपालजी ने उनसे दो ही प्रश्न पूछे—"क्या आप क्रांति गतिविधियों में भाग लेने के लिए तैयार हैं?" उत्तर 'हाँ' मे मिलने पर दूसरा प्रश्न आया—"क्या आप पार्टी कार्य के लिए घर छोड़कर आने के लिए तैयार हैं?" किशोर-सुलभ उत्साह ने बिना सोचे तुरंत इस बात का भी उत्तर 'हाँ' में दे दिया। और बस इस तरह उनका क्रांतिकारी पार्टी में प्रवेश हो गया।

इस साक्षात्कार के समय इस किशोरी को न यशपाल की पहचान थी, न पार्टी कार्य की कोई जानकारी, न ही इसके लिए उठाए जानेवाले खतरों का गंभीरता से अहसास। पर 'हाँ' कर दी तो कर दी, अब उसे निभाना ही है।

फिर आई परीक्षा की घड़ी। शादियाँ उन दिनों पंद्रह-सोलह की उम्र मे हो ही जाती थीं। प्रकाशो की भी सगाई कर दी गई। घर में जश्न चल ही रहा था कि पिता को प्रकाशो की आलमारी में रखा प्रकाशो के नाम का एक खत हाथ लग गया, जिसमें पार्टी की ओर से पूछा गया था कि घर छोड़कर आने का कब तक इरादा है? इस पत्र ने घर में तूफान ला दिया। पिता ने बुलाया और क्रोध में उबलते हुए कहा, "कहाँ जाना चाहती हो? जाओ, मरो, जहाँ जाना हो, अभी चली जाओ।" प्रकाशो उस समय सनाका खा गई। पिता ने सोचा, बाद में माफी माँग लेगी और बात यहीं खत्म हो जाएगी। पर नहीं। सगाई के लिए घर में जमा मेहमानों के सामने वह चुप लगा गई, पर बाद में उसी दिन पड़ोसी (अपने किराएदार) के मकान की छत पर कूदकर, उनकी सीढ़ियों से नंगे पाँव उतरकर, घर से बाहर हो गई। चौराहे पर ताँगा

लेकर पार्टी के दफ्तर जाने के बजाय (वहा से उसे खोजकर वापस लाया जा सकता था) सीधे दुर्गा भाभी के घर पहुच गइ जिसके बाद उसे पार्टी मे शामिल कर लिया गया। भाभी समर्पित कार्यकत्री थीं। उन्होंने कपड़े बदलवाकर, घूँघट निकलवाकर उसे साथी इंद्रपाल के घर भिजवा दिया। घरवालों को उसका कोई सुराग नहीं मिला।

यहाँ पहुँचकर भी यशपाल के प्रश्नों पर उसका एक ही उत्तर था—"घर लौटकर नहीं जाऊँगी। पार्टी का काम करूँगी। उसके लिए हर खतरे का सामना करूँगी।" इसके बाद प्रकाशो की बाकायदा ट्रेनिंग शुरू हो गई। साथियों के पास से ढेरों क्रांति साहित्य उसके पास भेजा जाने लगा। रूसी क्रांति के बारे में, आयरलैंड के संघर्ष के बारे में पढ़कर उसने अपने आपको तैयार किया। विदेशो मे बैठे क्रांतिकारियों में से मदनलाल ढींगरा का कारनामा, 'गदर पार्टी' के कार्य, भीकाजी कामा आदि उसके प्रेरणास्रोत बने। यशपाल भी उसके लिए नई-नई किताबें लाते रहते थे। एक दिन तो यशपाल ने उसकी बाँह पर गोली दागकर भी उसकी परीक्षा ली। इंद्रपाल यशपाल की इस हरकत पर बहुत नाराज हुए; पर प्रकाशो खुश हो गई कि वह परीक्षा में खरी उतरी। वास्तव में तब तक वह यशपाल से प्रेम भी करने लगी थी। उतना ही वह उनके साथी सुखदेवराज से चिढ़ती भी थी, जो प्रकाशो के अनुसार किसी-न-किसी तरह पार्टी को नुकसान पहुँचाता रहता था।

आगे की सारी कहानी प्रकाशवती की क्रांति गतिविधियों में किसी-न-किसी रूप में भाग लेने की है, जिसके लिए उन्हें जगह व नाम बदल-बदलकर, खतरे उठाते हुए कई जगह रहना पड़ा था। 'दिल्ली षड्यंत्र केस' की वह भी अभियुक्त थी और उसके नाम पर ब्रिटिश सरकार ने इनाम भी घोषित किया था; पर वह पकड मे नहीं आती थी। फिर भी १९३४ में गिरफ्तार होकर जेलयात्रा कर आई थी। छूटने पर १९३६ में उसने अफवाहों और आरोपों से बचने के लिए जेल में कैदी यशपाल से विवाह कर लिया था। उसकी शादी में मात्र एक रुपया चार आना खर्च हुआ था, जिसे जेलर ने ही संपन्न कराया था। उसके बाद यशपालजी की रिहाई तक वह दंत-चिकित्सा का प्रशिक्षण ले आत्मनिर्भर हो गई थी। फिर १९३८ के बाद तो उसने यशपाल को आर्थिक चिंताओं से मुक्त रखने के लिए उनके पत्र 'विप्लव' के प्रकाशन का काम सँभाल लिया था। यशपालजी अपने लेखन में लग गए और उनके देहावसान के बाद भी प्रकाशवती पाल ने उनकी पुस्तकों के प्रकाशन का काम सँभाले रखा। स्वयं लेखिका रूप में प्रकाशवती पाल का योगदान 'लाहौर से लखनऊ तक' उनकी संस्मरण पुस्तक तथा छिटपुट लेखों तक सीमित है।

□

पंजाब की छात्रा

मनमोहिनी जुत्शी

पंजाब की एक जानी-मानी स्वतंत्रता सेनानी लाडोरानी जुत्शी की तीनो लडकियाँ—मनमोहिनी, जनक और श्यामा 'असहयोग आंदोलन' के दिनों में छात्र आंदोलन में हिस्सा ले रही थीं, जिनमें से बड़ी बहन मनमोहिनी अगुआ थीं। माँ की प्रेरणा से मनमोहिनी ने स्कूली जीवन से ही राजनीति में रुचि लेनी शुरू की और फिर कॉलेज में जाकर छात्र यूनियन की नेत्री बन गईं। स्वतंत्रता आंदोलन में मनमोहिनी के भाग लेने की शुरुआत तब हुई जब लाहौर में अक्तूबर १९२० में सुभाषचंद्र बोस ने द्वितीय अखिल पंजाब छात्र सम्मेलन को संबोधित किया। उस छात्र सम्मेलन की अध्यक्ष मनमोहिनी ही चुनी गई थी। इसके तुरंत बाद दिसंबर १९२९ में वह 'लाहौर छात्र संघ' की अध्यक्ष भी चुन ली गई। उस पद पर चुनी जानेवाली वह पंजाब की पहली नवयुवती थीं। कुछ दिन पूर्व नेताजी सुभाषचंद्र बोस के भाषण में मिले आह्वान ने उनके भीतर एक प्रेरणा जगा दी थी, एक जोश भर दिया था। तभी से वह कुछ करने, कर दिखाने के लिए बेचैन रहने लगी थी।

१९२९ के ऐतिहासिक 'लाहौर कांग्रेस अधिवेशन' में जब श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में 'पूर्ण स्वाधीनता' संबंधी प्रस्ताव पास हुआ, उस समय अधिवेशन में 'कांग्रेस स्वयंसेविका दल' का नेतृत्व मनमोहिनी ही कर रही थी। इसके बाद शीघ्र ही उन्हें कुछ कर दिखाने का अवसर भी मिल गया। २६ जनवरी १९३० को, जब भारत ने अपना 'पहला स्वाधीनता दिवस' मनाया, तब छात्रों और अधिकारियों के बीच उठे विवाद को सुलझाकर तनाव दूर करने में भी मनमोहिनी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पर उससे भी अधिक उनके साहस की परीक्षा तब हुई, जब कांग्रेस अधिवेशन व आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें कॉलेज से निकालने की धमकी दी गई। उन्हें कहा गया कि वह छात्र यूनियन से इस्तीफा दे दें,

अन्यथा दीक्षांत समारोह मे उनकी डिग्री जब्त कर ली जाएगी पर न तो वह इस धमकी के आगे झुकीं, न इस्तीफा दिया, न आंदोलन में हिस्सा लेना ही छोडा। भाग्य ने भी उनका साथ दिया। दीक्षांत समारोह में सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. राधाकृष्णन (बाद में भारत के राष्ट्रपति) पधारे। उन्होंने मनमोहिनी की डिग्री रोकने से इनकार कर दिया। यह मनमोहिनी की निर्भीकता की जीत थी। यह १९३० की ही बात है।

इसके पूर्व जब १९३० का 'नमक आंदोलन' छिड़ा, पंजाब कांग्रेस कमेटी द्वारा मनमोहिनी को अपने स्वयंसेविका दल के साथ केंद्रीय विधानसभा हॉल के बाहर धरने व प्रदर्शन के लिए शिमला भेजा गया। शिमला उस समय देश की ग्रीष्मकालीन राजधानी थी। मनमोहिनी ने अपनी दोनों बहनों सहित बीस स्वयंसेविकाएँ तैयार कीं और अपनी इस टोली के साथ शिमला पहुँच गईं। शिमला में कुछ छात्राएँ और आ मिलीं और इस तरह टोली पच्चीस-तीस की हो गई। वायसराय लॉर्ड इरविन के सामने प्रदर्शन के बाद इन लड़कियों ने शिमला की प्रसिद्ध माल रोड पर जुलूस भी निकाला और अपना मकसद पूरा कर लाहौर लौट गईं। ग्रीष्म राजधानी शिमला के इतिहास में ऐसी जुर्रत किन्हीं लड़कियों ने पहली बार की थी, जिसके लिए बाद में ब्रिटिश पुलिस अधिकारियों की खूब खिंचाई भी हुई।

मनमोहिनी जुत्शी विवाह के बाद मनमोहिनी सहगल के रूप में दिल्ली की एक जानी-मानी समाजसेविका के रूप में प्रसिद्ध हुईं। एक भेंट के दौरान जब मैंने उनसे शिमला की उस घटना के बारे में पूछा, जिसके लिए उन्हें कॉलेज से निकालने तथा डिग्री जब्त कर लेने की धमकी मिली थी कि 'केंद्रीय विधानसभा के बाहर उन्हें किसीने इकट्ठा होने से या प्रदर्शन करने से रोका नहीं?' तो मनमोहिनीजी ने छात्र जीवन की अपनी उन यादों को कुरेदते हुए बताया था—

"उन दिनों शिमला में आज की तरह वाहन नहीं चलते थे। हम लड़कियाँ टोली बनाकर एक साथ नहीं पहुँचीं। इधर-उधर दो-तीन या तीन-चार मिलकर गपशप करने लगीं कि किसीको शक न हो। उस समय वहाँ कुल पाँच कांस्टेबल ही तैनात थे; क्योंकि किसीको किसी प्रदर्शन का अँदेशा न था कि रोका जाता अथवा अतिरिक्त पुलिस बुलाई जाती। उन पुलिसवालों ने हमें इधर-उधर खडे देखकर पूछताछ की कि हम वहाँ क्यों आई हैं? हमने कहा, 'बस ऐसे ही वायसराय साहब को देखने आ गई हैं। पास नहीं जाएँगी, बस दूर से ही देखेंगी।' उन पुलिसवालों ने हमारे गिर्द एक छोटा असफल घेरा बनाकर हमें दूर ही रोकना चाहा पर तब तक वायसराय की गाड़ी सामने से आती दिखी। और अतिरिक्त पुलिस बुलाने में आठ-दस मिनट तो लगते ही। अतः जैसे ही वे पाँच कांस्टेबल वायसराय

की गाडी का ओर लपके हमने तुरत अपने कपडा मे छिपाए झडे निकाले और भागकर सबकी सब के सामने आकर नारे लगाने लगीं न नजर गड़ाकर हमें देखा, पुलिसवालों को घूरा और तेजी से भीतर चले गए। पुलिसवाले हक्का-बक्का रह गए। हमारा मकसद पूरा हो चुका था। इसके बाद हम झडे लिये, नारे लगातीं माल रोड पर छोटा जुलूस निकालने लगीं। दर्शक देखकर आश्चर्यचकित रह गए। पर, शायद वायसराय के ही हुक्म से, हम छात्राओं को तब गिरफ्तार नहीं किया गया। इससे उत्साहित हो हमने कुछ दिन सांसदों, बड़े अधिकारियो के बंगलों पर धरना देकर उनसे त्यागपत्रों की माँग की; फिर गिरफ्तारी का खतरा भॉप लाहौर लौट आई।'' लाहौर लौटकर मनमोहिनी व उनकी बहनें गुप्त रूप से क्रातिकारियों के साथ भी काम करने लगी थीं।

१९३० में ही भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव को फाँसी की सजा सुनाए जाने पर मनमोहिनी ने कॉलेज में हड़ताल करवा दी थी। तब अपनी दोनों बहनों तथा अन्य तेरह युवतियों के साथ उनकी पहली गिरफ्तारी व डेढ़ महीने की सादी कैद की सजा हुई। न्यायालय जाने से इनकार करने पर उनका मुकदमा जेल के भीतर ही चलाया गया। फिर रिहाई से एक दिन पूर्व उन सभी को बिना सूचना रात के समय रिहा कर दिया गया। इस तरह नवंबर की सर्दी की रात को लड़कियों, महिलाओ को रिहा करने के विरोध में मनमोहिनी के नेतृत्व में सभी ने रात को घर जाने से इनकार कर, कड़ाके की सर्दी में, बिना जरूरी कपड़ों के ही जेल के फाटक पर धरना दिया और रात वहीं गुजार दी। भगतसिंह व साथियों को सजा सुनाए जाने पर जेल में भी इन सभी साथिनों ने चौबीस घंटे की भूख हड़ताल की थी।

दूसरी बार जनवरी १९३१ में अपनी दोनों बहनों—जनक, श्यामा और तीन अन्य साथिनों के साथ दुकानों पर धरना देते जब उन्हें गिरफ्तार किया गया, तब इस बार एक साल की कड़ी कैद की सजा सुनाई गई थी; पर मार्च १९३१ में ही इन्हें 'गांधी-इरविन समझौते' के बाद रिहा कर दिया गया। १९३२ में मनमोहिनी फिर पकड़ी गई और एक साल की कड़ी कैद की अवधि पूरी करके ही रिहा हुईं। माँ पहले से ही जेल में थीं। दोनों बहनें भी साथ पकड़ी गईं और साथ ही छूटीं।

□

चटगाँव शस्त्रागार कांड

सूर्यसेन व उनके किशोर-नवयुवक साथी

सूर्यसेन

सन् १९३०। एक ओर अहिंसक असहयोग आंदोलन और 'नमक सत्याग्रह', दूसरी ओर सशस्त्र विद्रोह की इतनी बड़ी रोमांचक घटना, जो सारे क्रांतिकारी आंदोलन में न इसके पूर्व घटी, न इसके बाद। अंग्रेज सरकार की नींद उड़ानेवाली इस घटना के सूत्रधार थे—नेता सूर्यसेन, जिन्हें सारे क्रांतिकारी 'मास्टर दा' के नाम से पुकारते थे और इस बड़े 'एक्शन' में साठ से ज्यादा की संख्या में किशोर व

नवयुवक शामिल थे अधिकतर सदस्य बीस साल की उम्र से कम के जोश उमंग व देश की आजादी के लिए मर मिटने की भावना से भरे अधखिले फूल थे 'एक्शन' के बाद भी दमन व बदले की दुतरफा कार्यवाहियों के चलते यह संघर्ष पूरे चार वर्ष तक लंबा खिंच गया था और इस दौरान नवयुवक पीढ़ी ने सर्वाधिक कुरबानियाँ दी थी। कुरबानियों की संख्या इतनी कि उनके पूरे विवरण भी नहीं मिलते। इसलिए इस एक आलेख में इस सबको समेटना पड़ रहा है, क्योंकि यहाँ स्थान की सीमा है और आगे विस्तृत खोज की संभावनाएँ ही नहीं खुलीं। प्राप्त विवरणों के आधार पर भी इस एक 'एक्शन' को कम-से-कम एक पूरी किताब के फलक की अपेक्षा है।

बंगाल के विभिन्न भागों (अब बँगलादेश मिलाकर) के इन क्रांतिकारी अल्प वय लड़के-लड़कियों ने 'अनुशीलन समिति', 'युगांतर दल', 'श्री संघ', 'दीपाली संघ', 'बंगाल वालंटियर्स', 'छात्र संघ' आदि विभिन्न संस्थाओं में शस्त्र-चालन और गुप्त गतिविधियों का प्रशिक्षण लिया था और भारत की आजादी के लिए सबकुछ करने, सबकुछ सहने की कसमें खाई थीं।

अधिकतम संख्या में जाँबाजों की सरफरोशी की तमन्ना से भरी इस बड़े एक्शन की संक्षिप्त कहानी इस प्रकार है—

'युगांतर पार्टी' के नेताओं ने पाँच साल की नजरबंदी के बाद रिहा होते ही पार्टी के पत्र 'स्वाधीनता' का प्रकाशन शुरू किया। कांग्रेस के अहिंसक असहयोग आंदोलनों में भी सत्याग्रहियों पर लाठी चार्ज व अन्य अत्याचारों के खिलाफ कलम उठाने पर ब्रिटिश सरकार ने 'स्वाधीनता' के एक के बाद एक चार युवा संपादकों को गिरफ्तार कर लिया और पत्रिका बंद करवा दी। इस घटना के कारण रोष से भरे सूर्यसेन ने एक बड़े एक्शन के लिए नवयुवकों को तैयार करना शुरू कर दिया। शांत स्वभाव के अध्यापक सूर्यसेन इसके पूर्व जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री थे। पर हालात भाँपकर उन्होंने चटगाँव के समुद्री तट पर नमक कानून तोड़ने के लिए स्वयंसेवकों की भरती करते समय ही क्रांति गतिविधियों के लिए उपयुक्त नवयुवकों का भी चयन कर लिया था और उन्हें सघन प्रशिक्षण देने लगे थे। अप्रैल की शुरुआत में 'स्वाधीनता' पत्रिका बंद होने की घोषणा और शुरू अप्रैल में ही 'धरसाणा' में नमक कानून तोड़नेवाले सत्याग्रहियों की पुलिस द्वारा अमानुषिक पिटाई ने आग में घी का काम किया। फलतः 'चटगाँव एक्शन' हो गया। उस समय निर्मल सेन सूर्यसेन के निजी सहायक थे और इसी काम के लिए बर्मा से अपनी नौकरी छोड़कर आए अंबिका चक्रवर्ती दूसरे नंबर के नेता। अन्य अनेक किशोर-

किशोरिया भी आ जुटे थे; जिनका चयन उनके प्रशिक्षण, अनुभव व चारित्रिक परीक्षण के आधार पर किया गया था। इस तरह सूर्यसेन के साथ इस बड़े 'एक्शन' में कुल बासठ लोग शामिल थे, जिनमें से लगभग दो-तिहाई संख्या कम उम्र के किशोर-किशोरियों की थी।

'युगांतर पार्टी' की चटगाँव शाखा के नेता सूर्यसेन के नेतृत्व में पहली बैठक २८ नवंबर, १९२९ को पार्टी के कार्यालय ७१, मिर्जापुर रोड पर हुई थी जिसमें जिले के खजाने व शस्त्रागार पर कब्जा करने की योजना बनी। अर्थात्, नमक सत्याग्रह आरंभ होने से पूर्व ही क्रांतिकारी सक्रिय हो गए थे। २९ नवंबर के निर्णय से पूर्व ही संगठित जत्थे को—घुड़सवारी, मोटर चलाना, नौका चालन, निशानेबाजी, प्राथमिक चिकित्सा आदि का प्रशिक्षण दिया जा रहा था। एक दर्जन रिवॉल्वर, पिस्तौलें और कुछ बम एकत्रित कर लिये गए थे। ईस्टर में अंग्रेज अधिकारियों के व्यस्त रहने तथा आयरलैंड सशस्त्र विद्रोह की याद के कारण १८ अप्रैल, १९३० का दिन चुना गया था। चटगाँव की पहाड़ियाँ छापामार युद्ध के लिए उपयुक्त थीं, फिर भी सूर्यसेन ने आसपास की संचार व्यवस्था भंग कर चटगाँव को बंगाल के शेष भागों से काट दिया था; ताकि ब्रिटिश सेना वहाँ देर से पहुँचे और वे अपना काम आसानी से कर सकें। अंबिका चक्रवर्ती ने यह कार्य समय पर कर दिया। रेल पटरियाँ उखाड़ दी गईं, सड़कें तोड़-फोड़कर यातायात भंग कर दिया गया और नियत समय पर १८ अप्रैल, १९३० को 'एक्शन' शुरू हो गया।

चटगाँव में दो शस्त्रागार थे—पहाड़ीतल्ला में रेलवे ऑक्जीलरी फोर्स का शस्त्रागार और रिजर्व पुलिस लाइन का शस्त्रागार। क्रांतिकारियों के पास दो मोटर कारें थीं। कुछ टैक्सियाँ उन्होंने किराए पर लीं और ड्राइवरों को बेहोश करके राह में छोड़ दिया (उन्हें मारा नहीं गया)।

पहाड़ीतल्ले के शस्त्रागार पर हमले का काम निर्मल सेन और लोकनाथ बल को सौंपा गया। सैनिक अधिकारी की वरदी में वे अपने तीन साथियों के साथ पहाड़ीतल्ला स्थित शस्त्रागार पहुँचे। संतरी ने अफसर जान उन्हें सलाम किया। इंचार्ज आगे बढ़ आया। लोकनाथ बल ने तुरंत उसे गोली मार दी। शेष संतरी डरकर भाग गए या उनके हथियार छीन लिये गए। कुछ संतरी मारे भी गए। अब एक मजबूत जंजीर शस्त्रागार ताले से बाँध, दूसरा सिरा मोटर कार में अटका, मोटर को विपरीत दिशा में चलाकर भारी-भरकम ताला भी तोड़ दिया गया। शस्त्रागार का फाटक खुलते ही जितने हथियार वे ले जा सकते थे, लेकर शस्त्रागार में आग लगा दी गई। सामने गली से कुछ अंग्रेज अफसर आते दिखे तो गोली चला दी गई,

निर्मल सेन

अपूर्व सेन

जिससे वे डरकर पीछे घूम लिये।

दूसरा दल गणेश घोष और अनंत सिंह के नेतृत्व में रिजर्व पुलिस शस्त्रागार पर हमला करने पहुँचा। यहाँ भी पहले वही कार्यवाही कर इंचार्ज को गोली मार दी गई और शेष पहरेदारों को कब्जे में ले 'इनकलाब जिंदाबाद' व 'वंदेमातरम्' के नारों के साथ जितने हथियार वे ले जा सकते थे, लेकर शस्त्रागार को आग लगा दी गई। पर तभी एक दुर्घटना घट गई। हिमांशु सेन नाम का एक साथी आग लगाते हुए स्वयं उसकी चपेट में आकर बुरी तरह जल गया। उसे इस हालत में वहाँ छोड़ना खतरे से खाली न था; फिर उसे तुरंत चिकित्सा भी देनी थी। इसलिए अनंत सिंह और गणेश घोष उसे लेकर सूर्यसेन के मुख्य दल के साथ जा मिलने के बजाय पूर्व योजना बदलकर शहर चले गए। जले घायल साथी को किसी और साथी के हवाले किया और शेष दो साथियों—आनंद और जीवन घोषाल के साथ चटगाँव से निकल भागे। जीवन और आनंद उम्र में बहुत छोटे थे। उन्हें पीछे छोड़ना उचित न समझ चारों ने कलकत्ता के लिए चार टिकट लिये और कलकत्ता मुख्यालय की ओर चल दिए। पर तब तक घटना की खबर अखबार में आ चुकी थी। स्टेशन मास्टर को उनपर शक हुआ और उसने उनके टिकटों के नंबर नोट कर पुलिस को उनपर निगाह रखने के लिए कहा। जब वे लोग नोआखाली के पास फेनी स्टेशन पहुँचे तो कुछ पुलिसवालों ने उन्हें डिब्बे से उतार लिया। तलाशी में उनके पास कुछ बरामद होता, इसके पूर्व ही चारों ने तुरंत अपनी पिस्तौलें निकाल पुलिस पर दनादन फायरिंग शुरू कर दी। दो सिपाही व एक पुलिस अफसर घायल हो गए। स्टेशन कर्मचारी डरकर भाग गए और ये चारों वहाँ से बचकर भाग निकले। फिर सब

अलग-अलग रास्तो से ७१, मिर्जापुर स्ट्रीट के अपने मुख्यालय पहुचे।

उधर हिमांशु सेन को जली हुई हालत में पुलिस ने गिरफ्तार कर अस्पताल पहुँचा दिया, जहाँ कुछ दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। चटगाँव नगर पर क्रांतिकारियो ने कब्जा कर जिला मुख्यालय पर तिरंगा फहरा दिया था। गोरे अफसरों ने भागकर चटगाँव बंदरगाह पर खड़े जहाजों में शरण ली थी। वहाँ से वायरलेस द्वारा शस्त्रागार पर हमले की खबर कलकत्ता पहुँचा दी गई थी; पर रेलवे लाइन की टूट-फूट के कारण ब्रिटिश सेना की टुकड़ी सहायता के लिए वहाँ तीन दिन बाद पहुँच सकी। अन्य क्रांतिकारियों ने तब तक जलालाबाद की पहाड़ियों में शरण ले ली थी। पर भनक मिलते ही २२ तारीख को ही वहाँ सेना ने घेरा डाल लिया। क्रांतिकारियो के पास मामूली बंदूकें थीं, जबकि शत्रु मशीनगनों से लैस थे। पर बेहतर हथियारो के बावजूद ब्रिटिश सैनिक पहाड़ी पर नहीं चढ़ सके; क्योंकि उधर से अंधाधुध गोलियों की बौछारें की जा रही थीं। रात भर जारी रही आमने-सामने की इस लड़ाई में ग्यारह क्रांतिवीर शहीद हो गए, कुछ घायल हुए। पर ब्रिटिश सैनिक अधिक सख्या में मारे गए थे, इसलिए पौ फटने तक वे पीछे हट गए। इस लड़ाई के दौरान पूरे समय सूर्यसेन व निर्मल सेन अपने साथी क्रांतिकारियों की मदद करते रहे और उनका हौसला बढ़ाते रहे। उनकी ओर से युद्ध का नेतृत्व कर रहे थे—लोकनाथ बल। इस घटना की खबर सुनकर इलाहाबाद में श्री मोतीलाल नेहरू ने इन बंगाली नवयुवकों और किशोरों की वीरता की बहुत सराहना की। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि बिना सैनिक सहायता के इन जाँबाजों ने कैसे यह युद्ध लड़ा! पर देश को आजाद कराने का व्रत लेकर इन लोगों ने जिस अदम्य साहस के साथ अद्भुत रण-कौशल का परिचय दिया, इसी कारण यह घटना क्रांतिकारी आंदोलन की एक प्रमुख घटना के रूप में इतिहास के पन्नों में अंकित हो गई है।

पर १८ अप्रैल के शस्त्रागार कांड व २२-२३ अप्रैल की रात जलालाबाद की इस लड़ाई में विजय के साथ यह लड़ाई यहीं समाप्त नहीं हो गई। अभी तो अग्रेजों का दमन-चक्र चलना शेष था और उसके बाद क्रांतिकारियों द्वारा बदले की कार्यवाहियाँ भी, जिस कारण यह युद्ध चार साल तक खिंच गया। आगे की कहानी सक्षेप में इस प्रकार है—

जलालाबाद की लड़ाई के बाद क्रांतिकारी पहाड़ी से उतर, छोटे-छोटे दलों मे बँटकर सुरक्षा की दृष्टि से इधर-उधर हो गए। अनंत सिंह और गणेश घोष एक सप्ताह बाद कलकत्ता पहुँचे। अंबिका चक्रवर्ती जलालाबाद युद्ध के समय घायल होकर बेहोश हो गए थे। साथी उन्हें मृत समझकर छोड़ गए थे। सुबह वे होश में

आए, पर मुख्य दल से उनका सपर्क टूट गया था ठीक होने पर इधर उधर भटकने के बद १९३२ म वे पकडे गए फिर अपील के बाद उनकी फासी का सजा आजीवन कालापानी की सजा म बदल दी गइ था। होश म आने पर जलालाबाद पहाड़ी पर अपने आसपास उन्होंने जिन ग्यारह साथियों की लाशें देखी थीं, उनमे पहला शहीद तेरह वर्षीय किशोर हरिगोपाल बल था। त्रिपुर सेन (पंद्रह वर्ष), निर्मल लाल (ग्यारह वर्ष), विधुभूषण आदि अन्य शहीद भी बीस वर्ष से कम उम्र के नवयुवक ही थे। इसके पूर्व २१ अप्रैल, १९२९, को मास्टर दा (सूर्यसेन) को एक मुठभेड़ में बचाने के लिए जिस किशोर ने अपनी जान दी थी, उस सुरेंद्र विकास दत्त की आयु भी मात्र पंद्रह वर्ष थी।

शेष प्रमुख क्रांतिकारियों में से सूर्यसेन और निर्मल सेन ने, कुछ अन्य साथियों के साथ, वहाँ से भागकर कोएपाड़ा नामक गाँव में शरण ली। उन्होने पहाड़ीतल्ले के गोरे रेलवे अफसरों की बस्ती पर हमले की योजना बनाई; पर तब तक वहाँ अधिक संख्या में सुरक्षा सैनिक तैनात कर दिए गए थे। अत: वहाँ पहुँचा छह लोगों का जत्था वापस लौट आया। ५ मई को वहाँ से लौटते समय जब ये लोग कर्णफूल नदी को नौका से पार कर रहे थे तो इन लोगों ने देखा कि मोटर लांचों और बडी नौकाओं से उनका पीछा किया जा रहा है। तट पर उतरकर वे आगे-पीछे दोनो ओर से घिर गए। किसी तरह भागकर एक मुसलिम परिवार में शरण ली; लेकिन पीछे पुलिस लगी जानकर उन लोगों ने इन्हें बाहर निकाल दिया। एक झाड़ी मे छिपने की कोशिश की; पर घेर लिये गए। एक साथी राह में गोली से मारा गया, एक गिरफ्तार कर लिया गया। शेष चारों ने झाड़ी की आड़ में युद्ध लड़ा, पर अंतत घेरकर मार डाले गए। जलालाबाद की लड़ाई के बाद यह दूसरी लड़ाई 'कालारपोल' की लड़ाई के नाम से जानी जाती है।

लोकनाथ बल भी कलकत्ता मुख्यालय पहुँच गए थे। अनंत सिंह और गणेश घोष पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे। बाद में लोकनाथ बल और गणेश घोष ने वहाँ से भागकर चंदनगर (क्रांतिकारियों के लिए तब सुरक्षित समझी जानेवाली फ्रांसीसी बस्ती, जहाँ शशिधर आचार्य और अध्यापिका कुमारी सुहासिनी गांगुली छद्म पति-पत्नी बन अरसे से क्रांतिकारियों को पारिवारिक सुरक्षा देकर उन्हे बचाने के काम में लगे हुए थे।) पहुँच गए। पर अब वह जगह भी सुरक्षित नहीं रह गई थी। एक दिन छापा मारकर वहाँ से सब लोग पकड़ लिये गए। अनंत सिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। जीवन घोषाल यहीं मुठभेड़ में मारा गया।

इस बीच एक अन्य घटना चटगाँव-कलकत्ता के बीच चाँदपुर रेलवे जंक्शन

पर हुई. तारिणी मुखर्जी नाम के एक पुलिस इंस्पेक्टर को एक अल्प वय किशोर ने रेल के डिब्बे में गोली मार दी। बंगाल के पुलिस महा अधीक्षक क्रेग इस डिब्बे में यात्रा करने वाले थे। गोली का निशाना उन्हें ही बनाया जाना था; पर वे बच गए। रामकृष्ण विश्वास और कालीपद भट्टाचार्य नाम के दो क्रांतिकारी इस गोलीकांड में शामिल थे। ये दोनों घटनास्थल से बचकर भाग निकले थे; पर बीस मील की दूरी पर उन्हें पकड़ लिया गया। विशेष अदालत में मुकदमा चलाया गया। रामकृष्ण को फाँसी हो गई। कालीपद को चौदह साल के होने के कारण फाँसी न देकर कालापानी भेज दिया गया; हालाँकि गोली उसीने चलाई थी। क्रांतिकारी नेताओं और कुछ महत्त्वपूर्ण साथियों को जेल से छुड़ाने के प्रयास में अदालत की इमारत को उड़ाने की योजना भी बनाई गई; पर सुरंग बिछाते एक युवक पकड़ा गया। खोज-खबर लेने गए तारकेश्वर दस्तीदार पुलिस की गोली से बाल-बाल बचे। इस मामले में भी मुकदमा चला और कई नवयुवक गिरफ्तार हुए। फिर भी विफलता से निराश न हो जेल को उड़ाने की योजना बनी। पर यह योजना भी पुलिस को पूर्व भनक मिल जाने से विफल कर दी गई।

इसके बाद पुलिस डी.एस.पी. अहसानउल्ला खाँ की हत्या कर दी गई। इस 'एक्शन' का नायक भी पंद्रह वर्षीय किशोर हरिपद भट्टाचार्य था, जिसने गोली चलाने के बाद घटनास्थल से भागने का कोई प्रयत्न नहीं किया। ३० अक्तूबर, १९३१ की इस घटना के बाद हरिपद को बहुत यातनाएँ दी गईं कि वह अपने अन्य साथियों के नाम-ठिकाने बताए; पर किशोर ने मुँह नहीं खोला। इस किशोर पर पहले बाहर, फिर जेल में इतने अत्याचार किए गए कि उसके हाथ-पैर टेढ़े हो गए। यही नहीं, उसके बाप को भी बेरहमी से पीटा गया। उसके मात्र दस महीने के भाई को भी पुलिस ने बूटों के नीचे कुचलकर मार डाला। इसके बाद उसे आजीवन कैद की सजा देकर कालापानी भेज दिया गया।

अंग्रेजों ने अहसानउल्ला खाँ को एक हिंदू किशोर द्वारा मार दिए जाने की इस घटना को जानबूझकर सांप्रदायिकता का रंग देकर उस दिन अहसानउल्ला के अंतिम संस्कार में भाग लेने के बहाने नगर से सारी फौज एवं पुलिस को हटा लिया और शहर को गुंडों के हवाले कर दिया। इसमें अनेक निर्दोष जानें गईं और धर-पकड़ में जनता को बेवजह परेशान करने, उनपर पाबंदियाँ लगाने का भी बहाना अंग्रेज सरकार को मिल गया।

चटगाँव कांड और अहसानउल्ला खाँ हत्याकांड के बाद लगभग चार साल तक उस क्षेत्र की जनता, विशेष रूप से हिंदू जनता को तरह-तरह को दंडात्मक

सावित्री को भी उसके टी बी के मरीज किशोर पुत्र रामकृष्ण सहित चार साल की जेल हुई। इसी तरह 'एक्शनों' में भागीदार लड़के-लड़कियों में से अधिकतर लड़कों को फाँसी और लड़कियों को आजीवन या लंबी सजाएँ और सहायकों को चार से दस साल तक की जेल की सजाएँ सुनाई गईं।

बंगाल के इंस्पेक्टर जनरल लीमेन की हत्या ढाका मेडिकल कॉलेज के एक कम उम्र छात्र विनयकृष्ण वसु ने कर दी थी। दिनेश गुप्त, विनय और सुधीर उर्फ बादल गुप्त ने बंगाल राइटर्स बिल्डिंग (सेक्रेटेरिएट) में घुसकर कइयों को मार डाला था। इनमें से वसु और दिनेश को फाँसी हो गई। दिनेश को फाँसी की सजा सुनानेवाले जज को भी भरी अदालत में कन्हाई भट्टाचार्य ने मार डाला और स्वयं भी लड़ते हुए शहीद हो गया। सत्रह वर्षीय सुबोध और विनय ने जेल-यातनाओ में अपनी आहुति दी। बादल ने विषपान कर लिया। इसके पूर्व बारीसाल में पुलिस दरोगा को मारनेवाले चौदह वर्षीय एक बालक का भी यही हश्र हुआ था। बंगाल सरकार की निजी रिपोर्ट के अनुसार, इन चार वर्षों के घटनाक्रम में दस सफल हत्याओं में इक्यावन क्रांतिकारियों को फाँसी दी गई। कुल कितनों को लंबी या आजीवन सजाएँ दी गईं, कितने गोलीकांड में मारे गए, इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता। पर यह ज्ञात तथ्य है कि इतनी बड़ी संख्या में ज्ञात-अज्ञात किशोरों की भागीदारी अन्य किसी भी गतिविधि में कहीं भी नहीं रही; न इतनी अमानुषिक यातनाएँ व लंबी सजाएँ ही अन्यत्र दी गईं।

१९३३ के मध्य तक सूर्यसेन के लगभग सभी साथी पकड़े या मारे जा चुके थे। दस हजार रुपए इनाम के लालच में एक मुखबिर ने अंत में सूर्यसेन को भी पकड़वा दिया। अंतिम मुकदमा सूर्यसेन, उनके साथी तारकेश्वर दस्तीदार और कल्पना दत्त पर चलाया गया। इसमें सूर्यसेन व तारकेश्वर को फाँसी हुई तथा कल्पना को आजीवन कालापानी की सजा। (यह अलग बात है कि बीना दास, उज्ज्वला, कल्पना दत्त और शांति घोष, सुनीति चौधरी सहित सभी लड़कियाँ प्रातीय स्वशासन के दौरान १९३७ में छूट गई।)। इस तरह १२ जनवरी, १९३४ को सूर्यसेन व तारकेश्वर दस्तीदार की फाँसी के साथ चार वर्ष तक चला यह उग्र क्रातिकारी आंदोलन समाप्त हो गया। यद्यपि इक्का-दुक्का घटनाएँ फिर भी इधर-उधर घटती रहीं, पर एक अंतराल के बाद व्यापक आंदोलन फिर १९४२ का 'भारत छोड़ो आंदोलन' के रूप में ही सामने आया। कुछ एक्शनों, उनसे जुड़े नामों और १९४२ के उग्र आंदोलन पर आगे अलग से लिखा जा रहा है।

□

प्रथम क्रांतिकारी शहीद किशोरी

प्रीतिलता वादेदार

प्रीतिलता वादेदार

कुमारी प्रीतिलता वादेदार। आयु केवल सत्रह वर्ष। फूल सी नाजुक उम्र की एक लड़की। जब उसके खेलने-खाने के दिन थे, वह गोलियों से खेली और गोलियाँ खाईं। जब उसके हाथों पैरों में मेहँदी लगाई जाती थी, उसके हाथों ने पिस्तौलें थामीं और पैरों ने काँटों की राह अपनाई। सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की रानी लक्ष्मीबाई के बाद कुमारी प्रीतिलता प्रथम भारतीय वीरांगना थीं,

जिन्होंने शस्त्र-बल से ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी थी। लक्ष्मीबाई के समान ही प्रीतिलता भी अपने अंतिम समय तक अंग्रेजों से युद्ध करती रहीं और उन्हींके समान दुश्मन के हाथों न पड़ स्वयं शहीद हो गईं।

१८ अप्रैल, १९३० को 'चटगाँव शस्त्रागार कांड' भारत के क्रांतिकारी इतिहास में एक बड़े कांड के रूप में अंकित है। इसके बाद ब्रिटिश सेना और क्रांतिकारियों में जमकर संघर्ष ठन गया था। जलालाबाद में हुई एक सीधी मुठभेड़ में ब्रिटिश सेना के अनेक सैनिक मारे गए और कई क्रांतिकारी शहीद हो गए। सैनिक असंख्य थे, जबकि क्रांतिकारी दल में थोड़े से ही लोग। चटगाँव शस्त्रागार कांड के नेता सूर्यसेन ने सोचा, इस तरह तो हमारी शक्ति शीघ्र ही क्षीण हो जाएगी। यह सोचकर उन्होंने अपने दल को छिपकर छापामार युद्ध करने का आदेश दे दिया। कुमारी प्रीतिलता वादेदार इसी दल की सदस्या थीं।

अपने कुछ साथियों को खोकर दल के शेष लोग, जिनमें अपूर्व सेन, निर्मल सेन, प्रीतिलता आदि थे, पहाड़ी से नीचे ढलुवा जमीन पर उतरकर तितर-बितर हो गए। पुलिस पीछा करने लगी। स्थिति को नाजुक समझ नेता सूर्यसेन ने आदेश दिया, "हथियार सँभालो और मुकाबला करो।" इस दूसरी सीधी मुठभेड़ में सूर्यसेन की गोली से कैप्टन कामरूँ मारा गया; जबकि पुलिस की गोलियों से अपूर्व सेन और निर्मल सेन शहीद हो गए। सूर्यसेन और प्रीतिलता ने अपूर्व साहस का परिचय दिया। गोलियों का जवाब गोलियों से देते हुए दोनों किसी तरह बचकर भाग निकले। ब्रिटिश सरकार ने नेता सूर्यसेन की गिरफ्तारी के लिए दस हजार रुपए के पुरस्कार की घोषणा कर रखी थी। इस मुठभेड़ के समय प्रीतिलता और सूर्यसेन दल से सहानुभूति रखनेवाली सावित्री नामक एक महिला के मकान में छिपे थे। इस महिला को भी बाद में दंड भुगतना पड़ा।

फिर सूर्यसेन ने अपने साथियों की मौत का बदला लेने की एक योजना बनाई। योजना थी पहाड़ी की तलहटी में स्थित एक यूरोपीय क्लब पर आक्रमण कर नाच-रंग में मस्त अंग्रेजों को मौत के घाट उतारना। सूर्यसेन ने कुछ क्रांतिकारी साथ भेजकर प्रीतिलता को इस कांड का नेतृत्व सौंपा। पिछली मुठभेड़ में प्रीतिलता का शौर्य व साहस देखकर उन्हें इस लड़की पर विश्वास बढ़ चुका था। फिर भी भेजते समय उन्होंने प्रीतिलता से कहा, "देखो बहन, गिरफ्तार होकर पुलिस द्वारा अपमानित होने की अपेक्षा मर जाना कहीं अच्छा है। यदि संघर्ष से बचकर आने का अवसर न मिले तो विषपान कर वहीं शहीद हो जाना।" यह प्रीतिलता की नेता सूर्यसेन से अंतिम भेंट थी और सूर्यसेन का अपने एक विश्वसनीय क्रांतिकारी साथी

को आतम सदेश

२४ सितबर, १९३२ की वह रोमाचक रात। कल्पना दत्त से ली गई 'पोटैशियम सायनाइड' की पुड़िया जेब में रख तथा बमों-पिस्तौलों से सुसज्जित दल साथ लेकर प्रीतिलता अपने लक्ष्य की ओर रवाना हुई। क्लब में रात के समय अंग्रेज स्त्री-पुरुष शराब पीकर राग-रंग व नृत्य-संगीत में विभोर थे। क्लब के फाटक पर पहुँचते ही प्रीतिलता ने अपने साथियों को ललकारा, "प्यारे साथियो! बढ़ो, शीघ्रता करो। आज एक भी अंग्रेज यहाँ से बचकर न जाने पाए।" और इस ललकार के साथ ही क्लब की इमारत बमों के धमाकों और पिस्तौलों की गोलियों से हिल उठी। भीतर का राग-रंग चीख-पुकार में बदल गया। एक यूरोपियन महिला धराशायी हो गई। तेरह अंग्रेज बुरी तरह जख्मी हो गए। कुछ भाग निकले। कुछ सँभलकर उधर से गोलीवर्षा करने लगे। तभी एक गोली प्रीतिलता के फूल-से शरीर में भी आ लगी। बचने की आशा न देख प्रीतिलता लड़ते-लड़ते पहले की तरह ही भाग निकली। पर अंग्रेज पीछा कर रहे थे और गोली का घाव रिस रहा था। उन्होंने सोच लिया कि अब शहीद होने का समय आ गया है। अपने शरीर की भेड़ियों के हाथों दुर्गति कराने के बजाय उन्होंने वही किया, जो उनकी पूर्व योजना और नेता का आदेश था। उन्होंने तुरंत पुड़िया खोली और 'पोटैशियम सायनाइड' खाकर ससम्मान मौत को गले से लगा लिया।

कुमारी प्रीतिलता वादेदार चटगाँव के एक गरीब परिवार की लड़की थीं। पिता जोगबंधु नगरपालिका में मात्र पचास रुपए मासिक पर लिपिक थे। फिर भी उन्होंने प्रीति की शिक्षा का समुचित प्रबंध किया। वह स्कूल में गर्ल गाइड की सदस्या के रूप में सेवाभाव और अनुशासन की अभ्यस्त हो चुकी थीं। पर बालचर संस्था के नियमानुसार जब उन्हें ईश्वर और ब्रिटिश सम्राट् की वफादारी की शपथ लेनी पड़ती, तब उनका मन विद्रोह कर उठता। अपनी सहेलियों से कहतीं— "ईश्वर और देश के प्रति वफादारी की शपथ लो, ब्रिटिश सम्राट् के प्रति नहीं।"

इस तरह क्रांति का बीजारोपण उनके बालमन में ही हो चुका था। फिर जब उन्होंने लक्ष्मीबाई के बारे में पढ़ा तो उनका मन भी देश के लिए कुछ कर गुजरने के लिए छटपटाने लगा। इसी छटपटाहट के कारण वह मैट्रिक परीक्षा में अच्छे अंक नहीं ले सकीं और कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने से वंचित रह गई। परिवार की सहायता के लिए उन्होंने एक स्कूल में अध्यापन शुरू किया। लेकिन घर-गृहस्थी के लिए तो वह बनी ही नहीं थीं।

सूर्यसेन से जब प्रीतिलता की भेंट हुई, तब वह फरारी जीवन बिता रहे थे।

उनके एक साथी रामकृष्ण विश्वास कलकत्ता की अलीपुर जेल में बंद थे और उन्हें फाँसी की सजा घोषित हो चुकी थी। उन दिनों ऐसे खतरनाक कैदी से मिलना कोई कम जोखिम की बात नहीं थी। पर प्रीतिलता रामकृष्ण विश्वास से जेल में लगभग चालीस बार मिलीं और अधिकारियों को जरा भी संदेह नहीं होने दिया। इसी घटना से सूर्यसेन को प्रीतिलता की सूझ-बूझ और बहादुरी का प्रमाण मिल गया था। इसके बाद प्रीतिलता दल की एक विश्वस्त और महत्त्वपूर्ण सदस्या थीं। उन्हीं दिनों वह कुछ कर गुजरने की योजना बनाने लगी थीं और कल्पना दत्त से भेंट होने पर उन्होंने कल्पना से विष की पुड़िया माँगकर अपने पास रख ली थी।

प्रीतिलता की शहादत के बाद ब्रिटिश अधिकारियों को उनकी तलाशी लेने पर जो कुछ हाथ लगा, वह था एक छपा पैंफलेट, जिसपर लिखा था—'चटगाँव शस्त्रागार कांड और उसके बाद जो कुछ हो रहा है, वह भविष्य में होनेवाले एक भीषण युद्ध का ही प्रारंभिक रूप है। क्रांतिकारियों ने १८ अप्रैल, १९३० को यह संघर्ष छेड़ा है; और यह तब तक चलता रहेगा जब तक कि देश पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो जाता।' प्रीतिलता की यह भविष्यवाणी १९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में कितनी सत्य सिद्ध हुई! उसी अंतिम झटके ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने के बारे में सोचने पर विवश कर दिया था।

इतनी छोटी आयु और इतना महान् कार्य! प्रीतिलता क्रांतिकारी होने के अलावा एक अच्छी लेखिका भी थीं। उनके निर्भीक लेखों की कितनी ही पंक्तियाँ दल के सदस्यों के मन में प्रेरणा जगाती थीं। नवयुवती प्रीतिलता वादेदार की यह शहादत क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास का एक ऐसा दर्दनाक, किंतु गौरवशाली पृष्ठ है, जिसपर देश का युवा वर्ग सदा गर्व करता रहेगा।

□

कल्पना दत्त

कल्पना दत्त

१८ अप्रैल, १९३० को क्रांतिकारियों ने चटगाँव शस्त्रागार पर भ
: लूट लिया और शस्त्रागार अपने कब्जे में ले लिया। इस अचानक
ासक हक्के-बक्के रह गए। फिर चटगाँव के चप्पे-चप्पे पर पुलिस
ार्फ्यू' लगा दिया गया।

चटगाँव के क्रांतिकारियों पर जेल में मुकदमा चल रहा था। क्रांति

तय किया कि जिस दिन रामकृष्ण और दिनेश गुप्त को फासी की सजा दी जाए, उसी दिन डायनामाइट से जेल उड़ा दी जाए। विशाल पैमाने पर तैयारी हो गई। जेल उडाने का काम कल्पना दत्त व उसके साथियों को मिला। पर एकाएक किसी सूत्र से पुलिस को खबर मिल गई और उनकी योजना कार्यान्वित नहीं हो पाई। मुकदमा चलाकर रामकृष्ण और दिनेश गुप्त को फाँसी दे दी गई। गणेश घोष, लोकनाथ बल आदि कई क्रांतिकारी पकड़ लिये गए। अनंत सिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसी रात 'एक्शन' की असफलता पर १७ दिसंबर, १९३२ को पहाड़ीतल्ला के निकट पुरुष वेश में कल्पना दत्त पुलिस के हाथ पड़ गई। २४ सितंबर को यूरोपियन क्लब पर हमले में प्रीतिलता शहीद हो गई। कल्पना पर मुकदमा चलाया गया।

मुकदमा दफा १०९ के अंतर्गत चलाया गया था। कल्पना पर अभियोग था कि उन्होंने अपने घर में चटगाँव शस्त्रागार के हथियार छुपाए और लड़कियों को क्रातिकारी दल में शामिल होने के लिए भड़काया। अभियोग सही होने के बावजूद पूरी तरह राजनीतिक थे। वे अभियोग दफा १०९ में नहीं लगाए जा सकते थे, इसलिए कल्पना जमानत पर छूट गईं। परंतु उनके घर पर सशस्त्र पुलिस का पहरा बैठा दिया गया। वे न कहीं जा सकती थीं, न आ सकती थीं। उनकी हर गतिविधि पर कड़ी नजर रखी जा रही थी। कल्पना जैसी लड़की के लिए यह स्थिति असह्य थी। मास्टर दा (सूर्यसेन) का संदेश पा, किसी तरह मौका निकालकर वह घर से भाग गईं और सूर्यसेन के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकने लगीं। कही भी ठहरना खतरे से खाली न था। क्रांतिकारियों की हरकतों से बौखलाई पुलिस जगह-जगह उनका पीछा कर रही थी और कल्पना इस फरारी जीवन में भी कारतूस बनाना सीख रही थीं। एक दिन कल्पना, सूर्यसेन व अन्य साथी 'गोशल' गाँव के एक मकान में छिपे थे कि पुलिस वहाँ भी पहुँच गई। स्थिति को तुरंत भाँप ये लोग पिछले हिस्से से भाग निकले। सिर पर आई मुसीबत टल गई। पर कब तक?

१६ फरवरी, १९३३ को सूर्यसेन और कल्पना रात का खाना खाकर किसी काम से निकले कि रास्ते में पुलिस से मुठभेड़ हो गई। दो घंटे के युद्ध के बाद सूर्यसेन गिरफ्तार हो गए। कल्पना शत्रु पर एक-एक कर गोली चलाती हुई फिर भाग निकलने में सफल रहीं। रास्ते में तेज बारिश से वह बुरी तरह भीग गई, पर गीले कपड़ों में ही दूसरे गाँव जा निकलीं। वहाँ पहुँचकर जब नेता (मास्टर दा) सूर्यसेन की गिरफ्तारी का समाचार सुना तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। कुछ निराशा भी हुई कि शायद उनका अब बचना मुश्किल है। पर डरना, हिम्मत हारना उन्होंने सीखा ही नहीं था। सूर्यसेन के बाद अब पुलिस को मुख्यतः कल्पना की ही तलाश

थी और कल्पना थी कि यहा से वहा भाग छिपकर पूरी नौकरशाही को नचा रही थीं कई बार वह गोलियों की बौछार मे भी तीर सी निकल भागी थीं आखिरकार एक दिन उनकी गिरफ्तारी का समय भी आ पहुँचा।

मई १९३३ में कल्पना गाँव के जिस मकान में ठहरी थीं, सुराग मिलने पर उसे सेना ने घेर लिया। सुबह पौ फटते ही क्रांतिकारियों और सैनिकों में जमकर लडाई शुरू हो गई। दोनों ओर से खूब गोलियाँ चलीं। कल्पना का साथी उनके सामने ही धराशायी हो गया। एक छर्रा कल्पना के हाथ में भी आकर लगा। अनुमान लगाना कठिन नहीं कि चारों ओर से घिरी इस फूल-सी लड़की की उस समय क्या दशा हुई होगी। फिर भी उनके सधे, दृढ़ व्यक्तित्व ने पूरे दो घंटे तक बहादुरी से मुकाबला किया। आखिर उन्हें हथियार डाल देना पड़ा। गिरफ्तार करके रात भर उन्हे थाने में रखा गया। सूर्यसेन, तारकेश्वर, कल्पना आदि पर चटगाँव शस्त्रागार काड में मुकदमा चला। १९३४ में सूर्यसेन और तारकेश्वर दस्तीदार को फाँसी की सजा मिली और कल्पना को उम्र कैद की।

मास्टर दा को फाँसी के लिए जाते देख यह बहादुर लड़की पहली बार फूट-फूटकर रोई। मास्टर दा के लिए दुःख था ही, लेकिन उनका रुदन इस कमजोरी के कारण नहीं था, बल्कि इसलिए था कि उन्हें भी फाँसी की सजा क्यो नही दी गई। उनके मुँह से बार-बार निकला—''औरत होने के नाते दंड में भी यह भेदभाव! पुरुष साथी शहीद हो जाएँ और मैं उम्र भर जेल में सड़ूँ!'' सचमुच फाँसी चढना सरल है, जेल में आजीवन पल-पल गिनकर काटना बहुत बड़ी यातना है। पर उन्नीस वर्षीय कल्पना इससे भी हताश नहीं हुईं। जेल में उनका संघर्ष जारी रहा जो अंत में सफल हुआ। इसीलिए स्वाधीनता संग्राम में कल्पना दत्त का नाम क्रातिकारियों की अग्रिम पंक्ति में बड़े गर्व से लिया जाता है।

कल्पना दत्त का जन्म २७ जुलाई, १९१४ को चटगाँव में हुआ। माता का नाम शोभना देवी और पिता का विनोदबिहारी दत्त था। बचपन से ही इस बालिका को साहसी कहानियाँ सुनने का बड़ा शौक था। डॉ. खास्तगीर बालिका हाई स्कूल मे पढ़ते समय ही उन्होंने अनेक कहानी की पुस्तकें और क्रांतिकारियों की जीवनियाँ पढ डाली थीं। महापुरुषों और बहादुरों की जीवनियाँ पढ़ने में उन्हें विशेष आनद आता। इसके साथ ही पढ़ाई में भी वह सदा अच्छे नंबरों से पास होती थीं। बचे समय में व्यायाम करतीं और तैराकी सीखतीं, ताकि बहादुरी के काम करने के लिए शरीर को सुदृढ़ बनाया जा सके।

'असहयोग आंदोलन' के समय उनके दो चाचा आंदोलन में भाग ले रहे थे।

एक चाचा ने कल्पना की रुचि देख उन्हे क्राति सबधी कुछ ऐसा साहित्य लाकर दिया, जिससे उनका संकल्प और दृढ़ हो गया। १९२९ में जब उनकी उम्र केवल चौदह वर्ष थी, चटगाँव के एक विद्यार्थी सम्मेलन में उन्होंने जो भाषण दिया, तभी उनके भीतर छिपी शक्ति का आभास लोगों को मिल गया था—गरजता हुआ संबोधन—"अगर दुनिया में हमें गर्व से सिर ऊँचा करके जीना है तो अपने माथे पर से गुलामी का यह कलंक मिटा देना होगा!...साथियो, अंग्रेजों के चंगुल से छुटकारा पाने के लिए शक्ति का संचय करो, क्रांतिकारियों का साथ दो और भिड़ जाओ।"

असहयोग आंदोलन के दौरान १९२२ में कुछ हिंसात्मक घटनाएँ घट जाने से गांधीजी ने आंदोलन वापस ले लिया था। देश की युवा शक्ति को इससे बड़ी निराशा हुई। इसी समय बालिका कल्पना ने उन क्रांतिकारियों का, जो बमों, पिस्तौलों के सहारे अंग्रेजों को इस देश से खदेड़ देना चाहते थे, साथ देना शुरू कर दिया। चटगाँव में उन दिनों सूर्यसेन का दल सक्रिय था। सूर्यसेन के दल का एक सदस्य तारकेश्वर दस्तीदार अकसर कल्पना के यहाँ आया करता था। उसने भी उन्हे क्रांतिकारी साहित्य पढ़ने के लिए दिया और उन्हें दल में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। चटगाँव के कॉलेज में विज्ञान शिक्षा का प्रबंध न होने से कल्पना कलकत्ता के बेथुने कॉलेज में पढ़ने के लिए गईं। हॉस्टल में रहते हुए भी वह अपना व्यायाम का नित्य अभ्यास जारी रखतीं और अवसर की तलाश में रहतीं। दस्तीदार उनसे निरंतर संपर्क बनाए हुए था और उन्हें प्रशिक्षण दे रहा था। कल्पना ने लाठी, तलवार, पिस्तौल, छुरा आदि चलाना सीख लिया।

कल्पना दत्त मिदनापुर जेल में गांधीजी से भी मिली थीं। अपने बारे मे लिखते हुए अपनी पुस्तक 'चटगाँव शस्त्रागार आक्रमण के संस्मरण' में उन्होंने लिखा—'जेल में गांधीजी मुझसे मिलने आए। वे मुझसे मेरी आतंकवादी गतिविधियों के कारण नाराज थे। पर उन्होंने कहा—मैं फिर भी तुम्हारी रिहाई के बारे में प्रयत्न करूँगा।' इस तरह १९३७ में जब प्रांतीय शासन लागू हुआ तो गांधीजी, रवींद्रनाथ ठाकुर और सी.एफ. एंड्रयूज के विशेष प्रयत्नों से वह १ मई, १९३९ को रिहा हो गईं।

☐

छोटी लड़कियाँ, बड़ा कारनामा

शांति घोष और सुनीति चौधरी

शांति घोष

सुनीति चौधरी

भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में चटगाँव शस्त्रागार
बड़ी घटना थी। उससे संबंधित हत्याओं के बाद ब्रिटिश सरकार का दमन
से चल रहा था—चप्पे-चप्पे पर तलाशी और एक एक आदमी पर
बंगाल जैसे क्रांति की लपटों और बदले की जुल्मी कार्यवाहियों से घि
बदला अंग्रेज भी ले रहे थे और क्रांतिकारी भी। चारों ओर भय का वा
गया था।

ऐसे में २४ दिसंबर, १९३० को जो रोमांचकारी घटना घटी, व
अविश्वसनीय थी। खबर फैलते ही चारों ओर एक तहलका मच गया अं
चौकन्नी ब्रिटिश सरकार और चौकन्नी हो गई। पूरे देश का ध्यान आकर्षित
इस घटना की नायिकाएँ थीं पंद्रह और साढ़े पंद्रह साल की दो स्कूली ल

शाति घोष आर सुनीति चौधरी जिन्होंने साप के बिल मे हाथ डालने जेसा जाखिम भरा कारनामा कर दिखाया था।

सारे पूर्वी बंगाल (अब बँगलादेश) में उन दिनों प्रत्येक नागरिक पर कड़ी नजर रखी जा रही थी। पहचान के लिए उन्हें एक परिचय पत्र दिया गया था, जिसपर नाम-पता ही नहीं, चित्र भी लगा होता था। एक गाँव से दूसरे गाँव जाते समय हर व्यक्ति से यह परिचय पत्र माँगा जाता था, ताकि क्रांतिकारियों की धर-पकड़ की जा सके। परिचय पत्र दिखाने से इनकार करनेवाले को गोली भी मारी जा सकती थी। दमन चक्र की इंतहा के कारण क्रांतिकारियों का आवागमन बहुत कठिन हो गया था। नगरों की, गाँवों की हर सार्वजनिक और स्कूली इमारत में फौज की टुकड़ियाँ डेरा डाले थीं। फिर भी त्रिपुरा जिले के मजिस्ट्रेट को गोली से उडा देने बाबत क्रांतिकारियों द्वारा पत्र भेजे जा चुके थे।

कल्पना की जा सकती है कि कुमिल्ला शहर के अपने हेड क्वार्टर मे रहनेवाले मजिस्ट्रेट स्टीवेंस की सुरक्षा का कितना पुख्ता इंतजाम किया गया होगा। डबल काँटेदार तारों से घिरे अपने बंगले में उन दिनों वह एक कैदी की तरह रह रहा था। बाहर सख्त पहरा था और डर के मारे वह बाहर भी नहीं निकलता था। बंगले के नौकर तक बिना तलाशी के भीतर नहीं जा सकते थे। ऐसे में स्कूली लड़कियो द्वारा बंगले में प्रवेश पाकर स्टीवेंस पर गोली दागना कोई मामूली काम न था। पर इन जाँबाज लड़कियों ने यह असंभव कार्य भी कर दिखाया था।

इतनी सतर्कता, इतना सख्त पहरा कि चिड़िया भी पर फैलाने में सहमे। पर देशभक्ति के जोश के क्या कहने! दो छोटी बंगाली लड़कियाँ वहाँ जा पहुँचती हे।

फाटक पर तैनात संतरी ने पूछा, "क्या काम है?"

"हमारे स्कूल की लड़कियों की तीन मील की एक तैराकी प्रतियोगिता हे, उसी सिलसिले में जिला मजिस्ट्रेट के पास यह दरख्वास्त लेकर आई हैं हम। उनकी मदद के बिना हमारा यह काम नहीं हो पाएगा।"

"मदद ? किस तरह की मदद?"

"हम चाहती हैं कि उस तिथि और समय में तीन मील के उस क्षेत्र में ओर कोई नाव, स्टीमर आदि न चले।" यह कहकर लड़कियों ने अपनी जेब से प्रार्थना पत्र निकालकर दिखाया। संतरी ने फोन पर पूछा तो भीतर से उत्तर मिला, "नाबालिग स्कूली छात्राएँ हैं, भेज दें।" इस तरह दोनों लड़कियों ने पहली बाधा पार कर ली।

काँटेदार तारोंवाली सीमा पार कर गलियारे में पहुँचने पर भी उन्हें टोका गया। भीतर सी.आई.डी. ने पूछताछ की, फिर उनका आशय जानकर बरामदे में लगी कुरसियों

पर उन्हें बैठा दिया गया सुरक्षा अधिकारी लड़कियों के उत्तर से संतुष्ट हो ही चुके थे अर्जी भीतर भेज दी गई कुछ देर बाद मजिस्ट्रेट स्वयं बाहर आया वैल गर्ल्स यह काम पुलिस कप्तान कर देगा। तुम उनके पास चली जाओ।''

दोनों लड़कियों ने पसोपेश में पड़कर एक-दूसरे की ओर देखा, फिर एक ने आगे बढ़कर कहा, ''ठीक है, हम वहीं चली जाती हैं; पर लौटकर फिर आपके पास न आना पड़े, इसलिए कृपया इसपर इतना ही लिख दीजिए—'फारवर्डेड टू सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस', हमारा काम हो जाएगा।'' छोटी उम्र की लड़कियाँ और समय पर इतनी सूझ!

सूझ काम आ गई। मजिस्ट्रेट स्टीवेंस कागज को मेज पर रख जैसे ही उस पर कुछ लिखने को झुका, दोनों की आँखें चमकीं, फिर यकायक 'धाँय-धाँय'। पाँच सेकेंड के भीतर दोनों की छिपी पिस्तौलें बाहर निकल आई थीं और उनसे पाँच-पाँच गोलियाँ दनादन दाग दी गई थीं। आवाज से बंगला गूँज उठा। पर जब तक बाहर से सुरक्षा अधिकारी और अन्य लोग पहुँचे, स्टीवेंस का काम तमाम हो चुका था। खून से लथपथ उसकी लाश नीचे फर्श पर पड़ी थी और दोनों लड़कियों के होंठों पर विजयी मुसकान थिरक आई थी। भागने की कोई राह नहीं थी। लड़कियाँ तो जान हथेली पर रखकर ही आई थीं। तुरंत पिस्तौलें फेंक उन्होंने अपने आपको, 'वंदेमातरम्' के ऊँचे जयघोष के साथ, पुलिस के हवाले कर दिया।

शांति घोष का जन्म २२ नवंबर, १९१६ को कलकत्ता में और सुनीति चौधरी का २२ मई, १९१७ को कुमिल्ला में हुआ था। दोनों स्कूली छात्राएँ थीं और 'दीपाली संघ' की सदस्याएँ। शस्त्र-चालन का प्रशिक्षण उन्हें दीपाली संघ में ही मिला, जहाँ उन्होंने क्रांति द्वारा देश के लिए मर मिटने की कसमें खाई थीं। कम उम्र की होने पर ही वे इस तरह बंगले में प्रवेश पाने में सफल हुई थीं। पर उनके साहसी कारनामे ने सारे बंगाल में फिर से क्रांति की ज्वाला भड़का दी थी। जो सुनता, वही दाँतों तले उँगली दबाता—'वाह! ऐसी मिसाल—न कभी देखी, न सुनी। अब अंग्रेज भी क्रांतिकारियों पर जुल्म ढाने से पूर्व दस बार सोचेंगे।' और इस तरह क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में ये दोनों नाम स्वर्णाक्षरों में दर्ज हो गए।

छोटी उम्र के कारण उन्हें फाँसी की सजा नहीं दी गई। केवल लंबी अवधि की कैद मिली। पर १९३७ के प्रांतीय स्वशासन के दौरान, अन्य लड़कियों के साथ, शांति घोष और सुनीति चौधरी की भी रिहाई हो गई। सचमुच अपनी मिसाल वे आप ही थीं। सारे देश की लड़कियों के लिए प्रेरणा की अद्भुत मिसाल!

□

दीक्षांत समारोह में गवर्नर पर गोली चलानेवाली

वीणा दास

वीणा दास

६ फरवरी, १९३२। वीणा अपने कॉलेज के दीक्षांत समारोह में उस दिन अपनी बी.ए. की डिग्री लेने वाली थीं। गवर्नर स्टेनले जैक्सन अपना दीक्षांत भाषण दे रहे थे। वीणा धीरे से अपनी सीट से उठीं और फिर तेजी से मुख्य अतिथि के सामने आकर उन्होंने गोली चला दी। गवर्नर स्टेनले बुरी तरह काँप गया; पर निशाना जरा सा चूक जाने के कारण बाल-बाल बच गया।

यह दृश्य देख समारोह मे उपस्थित श्री सुहरावर्दी तेजी से उस ओर लपके और अंग्रेजो से बदले की भावना स भरी क्रोध में उबलती इस दुबली पतली लडकी को काबू में कर, उससे रिवॉल्वर छीनने की कोशिश करने लगे। पकडी जाने तक वीणा गोलियाँ चलाती रहीं; लेकिन धर-पकड़ और आत्मसमर्पण के बीच की कशमकश से निशाना इधर-उधर हवा में ही लगता रहा—उससे न तो कोई मरा, न गभीर रूप से जख्मी ही हुआ। पुलिस ने उनके अन्य साथियों के भेद उगलवाने के लिए उनपर अमानवीय अत्याचार किए; पर दलीय संगठन के बारे में पुलिस वीणा से एक भी शब्द उगलवा नहीं सकी।

मुकदमा एक दिन में एक बैठक में ही (अद्‌भुत ऐतिहासिक रिकॉर्ड) समाप्त कर दिया गया और वीणा को नौ वर्ष के कठोर कारावास का दंड सुनाया गया। पर इस अदालत के सामने अपने तीन पृष्ठ के लिखित बयान में वीणा ने जो कुछ कहा, वह भी एक ऐतिहासिक रिकॉर्ड से कम नहीं—'मातृभूमि के प्रति अपने प्रेम से प्रेरित होकर मैंने गवर्नर पर गोली चलाई। विदेशी सरकार के अत्याचारो के तले कराहते हुए भारत में जीवन क्या जीने योग्य है? इसके बदले क्या अपना बलिदान करके विरोध प्रकट करना अच्छा नहीं है? भारत की एक बेटी और इंग्लैंड के एक बेटे के बलिदान से क्या इतना भी नहीं होता कि भारत निरंतर पराधीनता की स्थिति को चुपचाप सहन करने के अपने पाप को जान लेता और इंग्लैंड अपने कार्यों की अमानुषिकता को स्वीकार कर लेता।'

इस तरह दिखने में सुशील और सुसंस्कृत इस लड़की ने साहस भरा बयान देकर अपने लिए लंबी कठोर कारावास की सजा स्वीकार की। उनकी सजा का अधिकांश समय कुमिल्ला की क्रांतिकारी शांति घोष व सुनीति चौधरी और चटगाँव की कल्पना दत्त के साथ मिदनापुर जेल में बीता।

वीणा दास का राजनीति में प्रथम प्रवेश सन् १९२८ में हुआ, जब 'साइमन कमीशन' का विरोध करने के लिए उन्होंने कुछ लड़कियों को साथ लेकर अपने कॉलेज गेट पर धरना दिया। उसी वर्ष कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में वह अपनी बहन कल्याणी दास 'कालनिधि' के साथ वालंटियर टुकड़ी में दिखाई दी थी। उसके बाद वह क्रांतिकारी दल की महिला शाखा में शामिल हो गईं। १९३० के 'चटगाँव शस्त्रागार कांड' के बाद बंगाल में क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ तेज हो गई थीं, तब वीणा भी उनसे अछूती न रही थीं।

वीणा दास का जन्म २४ अगस्त, १९११ को कृष्ण नगर में हुआ। उनके पिता श्री बेनीमाधव दास नेताजी सुभाषचंद्र बोस के इतिहासप्रसिद्ध शिक्षक थे।

अपने आदर्शवादी देशभक्त पिता की प्रेरणा से वीणा के मन में भी देश की आजादी का संकल्प जागा। वह एक प्रतिभाशाली और सुसंस्कृत छात्रा थीं। इसलिए किसी को अनुमान भी न था कि आगे चलकर यह लड़की इतना बड़ा दुस्साहस का काम कर सकती है।

१९३७ में बनी प्रांतीय कांग्रेस सरकार के प्रयासों से १९३९ में रिहा होने के बाद वीणा दास 'मंदिरा' नामक पत्रिका से जुड़ गईं। पर वह अधिक समय तक चुप नहीं बैठ सकती थीं। इसलिए जैसे ही १९४२ का 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू हुआ, वह फिर क्रांतिकारियों की कार्यवाहियों में संलग्न हो गईं।

□

उज्ज्वला मजूमदार, भवानी भट्टाचार्य, रवि बनर्जी, मनोरंजन बनर्जी

भवानी भट्टाचार्य

सन् १९३४। बंगाल में क्रांतिकारी सरगर्मियों के दिन। १९३० के 'चटगाँव शस्त्रागार कांड' के बाद की दमन कार्यवाहियों का बदला लेने के लिए कई विप्लवी दल सक्रिय थे। इन्हीं में से एक था—'बंगाल वालंटियर्स'। इस ग्रुप के

तरुण साथियों का एक दल दार्जिलिंग में गवर्नर एंडरसन को गोली मारने की तैयारी कर रहा था। पूरी योजना बन गई थी, बस उसके कार्यान्वयन के लिए उचित अवसर की तलाश थी। उज्ज्वला मजूमदार के नेतृत्व में तीन अन्य साथी—भवानी भट्टाचार्य, रवि बनर्जी तथा मनोरंजन बनर्जी—यानी कुल चार क्रांतिकारी इस काम के लिए तैनात हुए।

८ मई, १९३४ को दार्जिलिंग के लेवंग रेसकोर्स में गवर्नर एंडरसन आने वाले थे। इस ग्रुप को यह अवसर अनुकूल लगा। चारों साथी पिस्तौलें लेकर निकल पड़े। उज्ज्वला ने भवानी और रवि को घटनास्थल पर योजनानुसार यथा ठिकाने तैनात किया और स्वयं मनोरंजन के साथ पिछली रक्षा-पंक्ति बनाते हुए आड़ में कुछ दूरी पर खड़ी हो गईं। गोली चलाने के बाद चारों के भाग निकलने की योजना थी पर उन दोनों को पुलिस से घिरा देख ये दोनों भागकर सिलीगुड़ी आ गए। फिर इन दोनों के नाम भी वारंट निकल गए। सुरक्षा की दृष्टि से अब ये दोनों भी अलग हो गए। उज्ज्वला वेश बदलकर फरार हो गई, पर कुछ ही समय बाद अपनी एक सहेली शोभारानी दत्त के घर से गिरफ्तार कर ली गईं। इसके लिए शोभारानी दत्त को भी पकड़कर जेल भेज दिया गया, जहाँ यातनाओं के कारण वह अपना मानसिक संतुलन ही खो बैठीं।

स्पेशल ट्रिब्यूनल में मुकदमा चलाकर भवानी भट्टाचार्य, जिन्होंने गोली चलाई थी, को फरवरी १९३५ में फाँसी दे दी गई। रवि बनर्जी और मनोरंजन बनर्जी को लंबी सजाएँ हुई। उज्ज्वला मजूमदार को भी बीस वर्ष की लंबी जेल की सजा सुनाई गई, जिसे अपील के बाद घटाकर चौदह साल कर दिया गया। बाद में प्रांतीय स्वशासन के दौरान गांधीजी की कोशिश से वह १९३९ में रिहा हो गईं।

□

टीटागढ़ षड्यंत्र केस में गिरफ्तार

पारुल मुखर्जी और उषा मुखर्जी

'अनुशीलन समिति' की सदस्या क्रांतिकारी बहनों में पारुल मुखर्जी और उषा मुखर्जी के नाम भी उल्लेखनीय हैं। पारुल का जन्म १९१५ में और उनकी छोटी बहन उषा का जन्म १९१८ में कलकत्ता में हुआ। दोनों बहनें क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न थीं। पूर्वी बंगाल (अब बँगलादेश) में जगह-जगह घूमकर उन्होंने अनुशीलन समिति की शाखाएँ स्थापित कीं। पुलिस को खबर मिलने पर दोनों कुमिल्ला में भूमिगत हो गईं। १९३३ में जब दोनों के नाम वारंट निकल गए तो दोनों बहनों को बहुत भटकना पड़ा।

१९३४ में छोटी बहन उषा मुखर्जी गिरफ्तार कर ली गईं। उन्हें तीन साल की सजा हुई। १९३७ में वह रिहा हो गईं।

१९३५ के अंत में पारुल मुखर्जी जब टीटागढ़ में थीं, तब पुलिस ने 'टीटागढ़ षड्यंत्र केस' में सुराग पाकर उन्हें उनके घर में ही घेर लिया। भीतर तीन विप्लवी थे। दो कूदकर भाग गए। पारुल ने जल्दी-जल्दी प्रमाण जलाने शुरू कर दिए। इतने में ही पुलिस ने आकर बम-फार्मूला व अन्य कागजात जब्त कर लिये। पारुल गिरफ्तार हो गईं। पर उन्हें जब यातना देकर साथियों के पते देने के लिए विवश किया जा रहा था, तब उन्होंने पुलिस को इस मुस्तैदी से धमकाया कि थोड़ी यातना के बाद ही पुलिस ने उन्हें छोड़ दिया। टीटागढ़ षड्यंत्र केस में उन्हें तीन साल कड़ी कैद की सजा मिली। १९३९ में उन्हें रिहा किया गया।

□

'युगांतर दल' की सदस्या

फूल रेणु

पंद्रह साल की उम्र में ही 'युगांतर दल' की सदस्य बन, क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेनेवाली फूल रेणु ने 'साइमन कमीशन' विरोधी आंदोलन में अपनी सक्रियता बढ़ा ली थी। प्रेरणा परिवार के वातावरण से मिली; क्योंकि पिता के चाचा अश्विनीकुमार दत्त प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे। उनकी बातें और आसपास की खबरें सुनकर सोलहवें वर्ष में उन्होंने हाई स्कूल पास कर जैसे ही कॉलेज में प्रवेश लिया, उन्हें कॉलेज हॉस्टल में रहते क्रांति आंदोलन में भाग लेने की अधिक स्वतंत्रता मिल गई। घर में माँ रामकृष्ण मिशन के लिए एक मुट्ठी अन्न रोज निकालती थीं, उसी तर्ज पर फूल रेणु ने गरीब छात्राओं और क्रांतिकारियों के लिए चंदा कोष बनाना शुरू कर दिया। साथ ही ढेर सारा क्रांति साहित्य पढ़ डाला। वह भी, जो गैर कानूनी घोषित था। रात ग्यारह बजे के बाद जब हॉस्टल की बत्ती बंद कर दी जाती थी, तब वह मोमबत्ती जलाकर भी देर तक पढ़ती रहती थीं।

अच्छा अध्ययन कर लेने और कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों को सही ढंग से कर देने के कारण फूल रेणु को दल की काफी समझदार व सक्षम सदस्या माना जाने लगा। पत्रों को इधर से उधर ले जाना, महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कर 'युगांतर दल' तक पहुँचाना, साथ ही समाजसेवा और देशहित में हर संभव कार्य करना, अपनी पढ़ाई के अतिरिक्त जिम्मेदारी उन्होंने ओढ़ ली थी। उन दिनों छोटी उम्र में लड़कियों की शादी कर दी जाती थी; पर फूल रेणु ने विवाह करने से इनकार कर दिया और देशसेवा का व्रत लिया। क्रांतिकारी विचारों के पिता ने हर बात में उनका समर्थन किया। कई वर्षों बाद जाकर उनका यह व्रत टूटा, जब वह देश की एक अग्रणी नेत्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं और बंगाल से बाहर भी नाम कमा चुकी थीं।

कालज छोड़ने के बाद फुल रेणु ने युगांतर दल की कई गो
कुछ एक्शनों में भी भाग लिया और जेल भी गई, पर मुख्य क
समाजसेवा को ही बनाया। फुल रेणु गुहा बनने के बाद वह केंद्रीय
और अखिल भारतीय महिला परिषद् की सक्रिय सदस्या भी। प
किशोरावस्था के क्रांतिकारी रूप की ही चर्चा अभीष्ट है।

बारह साल की उम्र में चार साल की जेल

रामास्वामी

स्वतंत्रता संग्राम में दक्षिण भारतीय छात्र-छात्राओं की प्रमुख भागीदारी सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय मिलती है, जब विद्रोहात्मक तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों के दौरान पुलिस को परेशान करने और सरकारी संस्थानों पर कब्जा करने में वे कहीं-कहीं उत्तर भारतीय छात्रों से भी आगे रहे। पर इसके पूर्व भी दक्षिण में छिटपुट घटनाओं में लड़के-लड़कियों का उत्साह देखते ही बनता था। जब आसपास से देश पर न्योछावर होने की ही खबरें आ रही हों और कुरबानी के लिए परस्पर होड़ लगी हो, तो गतिविधियों के मुख्य केंद्रों (महाराष्ट्र, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब) से कुछ दूर विद्रोह की आँच न पहुँचे, यह हो नहीं सकता। अब १९३३ की इस घटना को ही लीजिए, जब किशोर जोश इस प्रकार छलक पड़ा था—

मद्रास सिटी बम केस। मजिस्ट्रेट ऐयाश अली के स्पेशल कोर्ट में मुकदमा चल रहा था। बम केस के अभियुक्त थे—इंद्रसिंह मुनि और शंभूनाथ। इस केस में हीरालाल नाम का युवक मुखबिर बन गया था, फलतः कई देशभक्त क्रांतिवीर पकड़े गए थे। जनता में तो इस बात पर रोष था ही, किशोर लड़के-लड़कियाँ भी मुखबिर के प्रति गुस्से से उबल रहे थे। उन्होंने अदालत में जाकर मुखबिर को मारने की योजना बनाई। एक बारह साल का किशोर इस काम के लिए आगे आया।

अदालत की कार्यवाही देखने-सुनने वहाँ रोज भीड़ लग जाती थी। जनता अंग्रेजी न्याय का नाटक देखती और ब्रिटिश सरकार को कोसती; पर कुछ कर नहीं पाती। ऐसे में एक वीर बालक रामास्वामी का साहस देखिए। वह जोश में भर अदालत की छत पर चढ़ गया। फिर जैसे ही मुखबिर हीरालाल कपूर भीतर से निकलकर बाहर अदालत के बरामदे में आया, रामास्वामी ने ऊपर से एक जलता

पटाखा उसपर छोड दिया पटाखा काफी ताकतवर था धमाके के साथ ही अदालत में खलबली मच गई सभी कर्मचारी और तमाशबीन घबराकर इधर उधर भाग गए। मजिस्ट्रेट भी घबड़ाकर भीतर चला गया।

मुखबिर तो निशाना चूक जाने से बच गया, पर बच्चा पकड़ लिया गया। कम उम्र के बालक द्वारा इस तरह अपना रोष प्रकट करने पर जनता ने उसे हाथोंहाथ लेना चाहा, पर तब तक पुलिस उसे पकड़ चुकी थी। क्रांतिकारियों के वकील ने उस मासूम को कम उम्र की दुहाई दे बचाना चाहा। पर जो स्वयं निडरता से अपना अपराध कबूल कर ले, उसे कैसे बचाया जा सकता है! बालक रामास्वामी ने साहस दिखाकर कहा, ''मैंने मुखबिर को मारने के लिए ही पटाखा छोड़ा था। यदि वह मरता नहीं तो जलकर झुलस ही जाता, तब भी उसे अपने किए की सजा तो मिलती। पर अफसोस! वह बच गया। मुझे इसी बात का अफसोस है, अपने किए का नहीं। आपको जो करना हो, करें। मैं सजा भोगने के लिए तैयार हूँ।''

पटाखे से कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ था। बालक की उम्र व समझ भी कम थी। इस उम्र में जोश में कोई भी बालक ऐसा काम कर सकता था। उसकी नादानी कहकर उसे हलकी सजा देकर भी छोड़ा जा सकता था। पर उस समय ब्रिटिश न्याय कैसा था, सभी जानते हैं। उसपर बालक का अपराध स्वीकार कर लेना। इस अपराध में उसे चार साल के कठोर कारावास का दंड सुनाया गया, जिसे वीर बालक ने खुशी-खुशी स्वीकार किया।

ऐसी ही थी उस समय हमारे किशोरों में, बच्चों तक में देश के लिए कुरबानी देने की उत्कट भावना! क्या आज की किशोर पीढ़ी इससे कुछ प्रेरणा लेगी? विशेष रूप से वे बच्चे और किशोर, जो चंद पैसों या अपने स्वार्थ व ऐशो आराम के लिए अपराधी तत्त्वों के हाथ बिककर आतंकवादी बनते हैं अथवा विदेशी एजेंसियों के हाथ का खिलौना बन देश के साथ गद्दारी करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

□

भारत की जोन ऑफ आर्क

रानी गिडालू

रानी गिडालू

स्वतंत्रता सेनानी युवतियों में सर्वाधिक लंबी जेल सजा भुगतनेवाली नगालैंड की रानी गिडालू ने जब १९३२ में अंग्रेजों के खिलाफ मुक्ति-युद्ध छेड़ा था, तब वह केवल सत्रह वर्षीय किशोरी थीं और १९४७ में देश की आजादी के बाद जब वह जेल से रिहा हुईं, तो अपनी पूरी जवानी और सुंदरता जेल के सींखचों के भीतर नष्ट कर चुकी थीं।

भारत की आजादी की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर राजधानी के लाल किले के दीवाने आम में स्वतंत्रता सेनानियों का सम्मान किया जा रहा था जब अपनी रंग बिरंगी परंपरागत पोशाक में नगालैंड की एकमात्र सत्तावन वर्षीय स्वतंत्रता सेनानी महिला ने उठकर 'ताम्रपत्र' लिया तो सारा हॉल हर्ष-विभोर हो तालियों से गूँज उठा था। यह रानी गिडालू ही थीं, जिन्हें नगालैंड की ही नहीं, भारत की भी 'जोन ऑफ आर्क' कहा जाता है।

इस बीच १९३७ में जब देश में प्रांतीय स्वशासन लागू हुआ था और सभी प्रमुख नेता छूटकर बाहर आ गए थे, लंबी व आजीवन सजायाफ्ता क्रांतिकारी युवतियाँ भी, तब श्री जवाहरलाल नेहरू ने जेल में जाकर रानी गिडालू से भेंट की थी और ब्रिटिश अधिकारियों से उनकी रिहाई के लिए जोरदार प्रयत्न किया था। पर अलीपुर कांग्रेस में गिडालू की मुक्ति के लिए प्रस्ताव पास करने के बावजूद सरकार ने उन्हें रिहा नहीं किया, बल्कि वायसराय ने रानी गिडालू के बारे में असम असेंबली में प्रश्न पूछने तक की मनाही कर दी थी। श्री नेहरू की मार्मिक अपील का भी तत्कालीन शासकों पर कोई असर नहीं हुआ था। उस समय के श्री नेहरू के उद्‌गारों की एक बानगी—

"उस बहादुर लड़की ने अपनी देशभक्ति के जोश में एक विशाल साम्राज्य को चुनौती दी। मगर उसे कितनी घुटन सहनी पड़ी! पहाड़ की ताजा खुशनुमा हवाओं में अब वह कभी भी आजादी से नहीं घूम सकेगी। पहाड़ की ढलानों और जंगली कुंजों में अब वह कभी मस्ती से विचरण नहीं कर सकेगी। वहाँ छोटी सी कोठरी में अकेले, बिलकुल अकेले! अपने विद्रोह और अपनी यंत्रणा को चुपचाप झेलते हुए। अफसोस कि हिंदुस्तान अपनी इस बहादुर बिटिया के बारे में जानता तक नहीं! भारत की यह बेटी नगा पहाड़ियों की वह पवित्र संतान है, जिसकी साँस-साँस में पहाड़ी हवाओं की ताजगी बसी थी; जिसे उसके प्रदेश के लोग आज भी आदर व दुःख से याद करते हैं, उस तंग कोठरी में कैसे दिन काट रही होगी? पर एक दिन आएगा, जब सारा हिंदुस्तान उसे याद करेगा और स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में इसका नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।"

पर इस भावभीनी अपील से अंग्रेज शासकों के कान पर जूँ भी नहीं रेंगी थी। उन्हें रिहा नहीं किया गया।

ऐसा ही था रानी गिडालू का अंग्रेजों पर आतंक। वे उन्हें खतरनाक विद्रोही समझते थे और उन्हें रिहा कर कोई जोखिम मोल नहीं लेना चाहते थे। गिडालू स्वयं तो उनके लिए भयानक शत्रु थीं ही, उनके पीछे उनके हजारों शिष्यों, विद्रोही

नगाओं का बडा क्रांति सेना अंग्रेजो को उनसे भी ज्यादा भयभीत करती थी अपने क्षेत्र में रानी के प्रभाव का अंदाजा इसीसे लगाया जा सकता है कि उनके स्पर्श किए जल की एक बोतल उस सस्ते जमाने में भी दस रुपए में बिकती थी; क्योंकि नगाओं के विश्वास अनुसार, उस जल में रोगों को दूर करने की शक्ति थी। इतना पूज्य माना जाता था उन्हें अपने अनुयायियों में। रानी गिडालू का यह प्रभाव कभी भी अपने लोगों पर कम नहीं हुआ था। वह अंतिम साँस तक अपने कबीले की प्रभावशाली नेत्री रहीं।

रानी गिडालू का जन्म २६ जनवरी, १९१५ को नगालैंड के घने जंगलो के बीच एक सुदूर अंचल 'लांगकाओ' में हुआ था। उनके पिता नगाओं के पुरोहित थे। रांगमेई आदिम जाति के गर्वीले पामेई कबीले की वही एकमात्र भाग्यशाली संतान थी, जिसने मिशन स्कूल में शिक्षा पाई। सन् १९३१ में जब वह नौवीं कक्षा मे पढ़ रही थीं, उनके छोटे भाई जादोनांग ने मात्र तेरह साल की उम्र में अपने को विशेष नगा दल का नेता घोषित कर अंग्रेजी राज के विरुद्ध अपने क्षेत्र की स्वतंत्रता का बिगुल बजा दिया था। एक अंग्रेज को मारने के अपराध में उसे फाँसी दे दी गई। भाई की मौत के बाद सत्रह वर्षीय गिडालू उस कबीले की रानी घोषित कर दी गई। रानी ने गद्दी पर बैठते ही अंग्रेजों के विरुद्ध जंग छेड़ दी। उनके पास गुरिल्ला युद्ध मे पारंगत चार हजार खूँखार नगा अनुयायियों की वालंटियर सेना थी। रानी व इस सेना ने कई महीने तक अंग्रेजों के छक्के छुड़ाए। असम राइफल से उनकी कई बार मुठभेड़ें हुई। लूटमार करके ये घने जंगलों में जा छिपते थे और छापामार लड़ाइयो द्वारा अंग्रेज अधिकारियों को मार देते थे। इस लगातार लड़ाई में रानी ने घोषणा की—"या तो अंग्रेज जीतेंगे या मैं।" कई महीने संघर्ष में बीत गए। फिर १७ अक्तूबर, १९३२ को ब्रिटिश सेना ने अचानक हमला कर रानी को पकड़ लिया। रानी के सैनिकों को घिराव में घिरकर मजबूरी में आत्मसमर्पण करना पड़ा।

रानी गिडालू के शब्दों में—"मैं उनके लिए जंगली जानवर के समान थी। एक मजबूत रस्सी मेरी कमर में बाँधी गई। दूसरे दिन कोहिमा में मेरी व मेरे छोटे भाई खयूसीनांग की क्रूरता से पिटाई की गई। कड़कती ठंड में हमारे कपड़े छीन हमे रात भर ठिठुरने के लिए खुले में छोड़ दिया गया। पर मैंने धीरज नहीं खोया, हार नहीं मानी। किसी लालच या भय के आगे झुकने से इनकार कर दिया।"

अनेक तरह की यातनाएँ देने के बाद रानी गिडालू पर इंफाल जेल मे मुकदमा चलाया गया। उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गई। उनपर दबाव डाला गया कि वह ईसाई बन जाएँ (इनका कबीला हिंदू नगाओं का है) तो उन्हे

मुक्त कर दिया जाएगा पर रानी गिडालू उस मिट्टी की नहीं बनी थीं। उन्होंने आजीवन जेल की सजा स्वीकार की।

देश आजाद होने के बाद रिहा होकर कुछ समय तो उन्होंने बिताया, फिर अपने लोगों की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं में जुट गईं।

भाग-४

(१९४२ का उग्र आंदोलन)

१९४२ का भारत छोड़ो आंदोलन और छात्र-छात्राओं की भूमिका

"तुम्हारा नाम?"

"बागी नंबर १, २, ३...२२।"

"पिता का नाम?"

"महात्मा गांधी।"

"माता का नाम?"

"भारत माता।"

१० नवंबर, १९४२ को लाहौर (तत्कालीन पंजाब) में केवल बैज वितरित करते हुए एक सौ चार विद्यार्थी गिरफ्तार हुए थे, जिनमें छात्राओं की संख्या बाईस थी। पुलिस स्टेशन पर पूछताछ के समय उन बाईस छात्राओं ने पुलिस अधिकारी को यही जवाब दिए थे। जाहिर है, चिढ़कर पुलिस अधिकारी ने उन्हें दंडित ही किया होगा। पर उन दिनों पुलिस से डरता कौन था! कुछ ही दिनों बाद अमृतसर मे छात्र-छात्राओं के एक जुलूस को रोकने के लिए पुलिस ने छात्रों को लाठी चार्ज मे घायल किया, छात्राओं के साथ अपमानजनक व्यवहार भी किया, जिसके विरोध मे छात्र-छात्राओं ने फिर उग्र प्रदर्शन किए।

छात्रों की एक मतवाली टोली पटना सेक्रेटेरिएट के सामने जुलूस लेकर पहुँची। सभी अपनी जान हथेली पर लिये, आजादी के नशे में चूर। उन दिनों आजादी के इन दीवानों को भला कौन रोक सकता था! अजीब मस्ती छाई थी उनपर। उधर अंग्रेज अफसर आर्चर भी सशस्त्र सिपाहियों के साथ तैनात था। उसने आगे बढ़ते छात्रों को ललकारकर पूछा, "क्या चाहते हो तुम लोग?"

"झंडा फहराना—बस।"

"कौन झंडा फहराएगा? वह जरा सामने आए।" आर्चर चीखा।

मे एक छोटी उम्र का छात्र जगपति कुमार आगे आया फिर देखते देखते ग्यारह छात्र गर्व के साथ उसके पीछे कतार बाँध आ खड़े हुए

आर्चर उस कम उम्र छात्र को लक्ष्य कर बोला अच्छा तुम झंडा फहराना चाहते हो! परिणाम जानते हो?"

"जानता हूँ। आपको जो करना है, करें। हमें जो करना है, करके जाएँगे।"

"हूँ, तो चलो, सीना खोल लो।" और आर्चर के यह कहने के साथ ही वह छात्र अपना सीना खोल एक कदम आगे बढ़ आया। आर्चर उसके साहस की कद्र नहीं कर पाया। गुस्से से भर उसने हुक्म दे दिया, "गोली चलाओ।" और 'धॉय धॉय'। उसी क्षण देखते-देखते ग्यारह की कतार में सभी छात्र एक-एक कर आगे आते गए और अपने सीने पर गोलियों की बौछार झेलते गए। एक अद्भुत रूप मे भयानक दृश्य उपस्थित हो गया। पीछे खड़ी जनता ने भी उन्हें नहीं हटाया, घटनास्थल पर डटी रही और 'वंदेमातरम्' का जयघोष करती रही। 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' की ललकार से सेक्रेटेरिएट की दीवारें काँप गईं। तभी लोगों की आँखें सेक्रेटेरिएट के गुंबद की ओर गईं, जहाँ पर एक दुबला-पतला छात्र तिरंगा फहराने में सफल हो चुका था। जुल्मी फौजी अपना क्रूर कारनामा कर वहाँ से हट रहे थे। कतार के ग्यारह-के-ग्यारह छात्रों पर गोली चल चुकी थी। इधर वे हटना शुरू हुए, उधर वह छात्र झंडा फहरा रहा था। उनके जाने के बाद एक ओर हाहाकार मचा था, जनता गुस्से से उबल रही थी, दूसरी ओर सेक्रेटेरिएट की चोटी पर चढ़ तिरंगा अपनी विजय पर लहरा रहा था।

तुरंत बाद गिनती हुई। छह विद्यार्थी घटनास्थल पर ही दम तोड़ गए थे। चार घायल अस्पताल पहुँचाए गए, जो लंबे इलाज के बाद ठीक हुए। ग्यारहवाँ बेहोश था। उसे जब गोली निकालने के लिए ऑपरेशन टेबल पर लिटाया गया जरा सी देर के लिए उसकी मूर्च्छा टूटी, तो उसने पहली बात की डॉक्टर से— "मुझे गोली कहाँ लगी है? पीठ पर या सीने पर?" जब उसे बताया गया कि सीने पर लगी है, तो वह गर्व से मुसकराया—"तब ठीक है। कोई यह तो नहीं कहेगा कि उसे भागते हुए गोली लगी।" बस ये ही उसके अंतिम शब्द थे। इसके बाद ऑपरेशन से पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। मौत के बाद भी गोली की स्थिति जानकर उसके चेहरे पर चिर शांति थी। अन्य घायलों के शरीर से जो गोलियाँ निकाली गईं, उनकी जाँच से पता चला कि उस क्रूर अधिकारी ने उन दमदम गोलियों का मासूम छात्रों पर इस्तेमाल किया था, जिसका प्रयोग अंतरराष्ट्रीय नियम के अनुसार युद्धक्षेत्र में भी निषिद्ध था। इस तरह के अनेकानेक गौरवमय

कारनामों और बलिदानों से देश की आजादी का इतिहास रक्तरंजित मिलेगा। १९४२ के उग्र आंदोलन के समय सभी के साथ और क्रांति आंदोलनों के समय क्रांतिकारियों के साथ विशेष रूप से यही बरताव हुआ था।

१९१९-२०-२२, ३०-३२-३४, ३९-४०-४१ के असहयोग आंदोलनों, सत्याग्रहों और व्यक्तिगत सत्याग्रहों की बार-बार आवृत्ति के बाद अंग्रेज अच्छी तरह समझ चुके थे कि दमन चक्र चलाने और किस्तों में कुछ घोषणाएँ करने से अब काम चलने वाला नहीं है। भारतीय मन अब हर कीमत पर आजादी हासिल करने के लिए प्रशिक्षित हो चुका है। अब अधिक देर तक भारत को गुलाम नहीं रखा जा सकेगा। ऐसी स्थिति में १९४१ के अंत में जब द्वितीय महायुद्ध अपने चरम पर पहुँच गया था और मार्च १९४२ में जापानी फौज द्वारा रंगून पर कब्जा कर लिये जाने से भारत के सीमांत पर ही खतरा पैदा हो गया था, ऐसे संकट के समय में युद्ध में भारत का पूरा सहयोग पाने के लिए 'क्रिप्स मिशन' को भारत भेजा गया; ताकि जापान को इस ओर बढ़ने से रोका जा सके।

लेकिन लॉर्ड क्रिप्स अपनी घोषणा की जो रूपरेखा साथ लाए थे, उसमें युद्ध समाप्ति के बाद भारत को औपनिवेशिक दर्जा देने की बात थी। साथ में यह आपत्तिजनक प्रस्ताव भी था कि यदि कोई प्रांत भारतीय संघ से अलग रहना चाहे तो वह सीधे ब्रिटेन से बात कर सकता है। जाहिर है, भारतीयों में फूट डालनेवाला आजादी का यह आधा-अधूरा प्रस्ताव स्वीकार करने योग्य न था। अतः आपसी मतभेद भुलाकर सभी राजनीतिक दलों ने एकमत से इसे अस्वीकार कर दिया था।

जुलाई शुरू में वर्धा में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक बुलाई गई और राष्ट्रीय माँग का प्रारूप स्वीकार करने के साथ इसपर भी विचार हुआ कि नामंजूर होने पर हमारा अगला कदम क्या होगा? समिति ने ब्रिटेन से माँग की कि वह तुरंत भारतीयों को सत्ता सौंपे और भारत छोड़ दे, अपनी रक्षा हम आप कर लेंगे। यदि ऐसा न किया गया तो सारी अहिंसक शक्ति का प्रयोग कर सीधी कार्यवाही शुरू की जाएगी। पर आंदोलन शुरू करने से पूर्व इस नीति की पुष्टि के लिए बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बुलाने का निर्णय हुआ।

८ अगस्त, १९४२ का वह ऐतिहासिक अधिवेशन। क्रिप्स मिशन की असफलता पर प्रकाश डालते हुए श्री नेहरू ने भारतीयों को पहले से अधिक कुरबानी देने के लिए तैयार रहने का आह्वान किया और 'भारत छोड़ो आंदोलन' का प्रस्ताव रखा। सरदार पटेल ने तुरंत इसका समर्थन किया और प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। इसके बाद गांधीजी ने अपना सबसे लंबा भाषण दिया। वे दो घंटे से

अधिक समय बोले जिसमें भारतीयों के लिए कुछ कर गुजरने की प्रेरणा थी कि अब और सहन नहीं करेंगे, करेंगे या मरेंगे। यही था करो या मरो का वह आह्वान, जिसने सारे देश को एक उग्र आंदोलन में धकेल दिया। उस उग्रता पर किसीका, यहाँ तक कि गांधीजी का भी, कोई वश न रहा और आंदोलन नेताओं के पास से सीधे जनता की झोली में चला गया।

गांधीजी अभी भी वायसराय को कुछ समय देना चाहते थे कि शायद बातचीत से कोई हल निकल आए; पर ऐसा नहीं हो सका। चेतावनीवाले भाषणों को ब्रिटिश अधिकारियों ने गंभीरता से लिया। खतरा भाँपकर अगले दिन कांग्रेस कार्यकारिणी की मीटिंग से पूर्व ही ९ अगस्त की सुबह गांधीजी सहित सभी बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर गुप्त जगहों पर भेज दिया गया। कुछ नेता परिस्थिति भाँप भूमिगत हो गए। शेष नजरबंद कर दिए गए। कांग्रेस संगठन को भी गैर कानूनी करार दे दिया गया। प्रस्तावित आंदोलन योजनाविहीन, नेताविहीन हो गया।

खबर फैलते ही जनता के मन में दबे आक्रोश में विस्फोट हुआ। हजारों हजार लोग सड़कों पर निकल आए और अंग्रेजी राज का हर चिह्न मिटाने पर उतारू हो गए। एक ही रात में सैकड़ों मील लंबी रेल पटरियाँ उखाड़ दी गईं। बंबई अहमदाबाद, पूना में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। हर शहर, हर कस्बे में लाठी-गोली खाकर भी लोग पीछे हटने को तैयार न थे। केवल दिल्ली में ही ११-१२ अगस्त को पुलिस ने निहत्थी भीड़ पर सैंतालीस बार गोली चलाई, जिसमें सड़सठ व्यक्ति मरे और एक सौ सैंतालीस घायल हुए। जनता का जोश उबाल पर था। कहीं से नेतृत्व निर्देशन न मिलने से आंदोलन स्वतः ही जनता के हाथ में चला गया था।

गांधीजी जेल जाते-जाते कह गए—'करो या मरो।' उनका आशय अहिंसक क्रांति द्वारा करने या मरने से था। पर जनता ने, विशेष रूप से चढ़ती उम्र के छात्र-छात्राओं ने, किशोरों और नवयुवकों ने अपनी ओर से 'मरो' के साथ 'मारो' भी जोड़ लिया था। हिंसा, तोड़-फोड़ और जहाँ अंग्रेज या उसकी पुलिस दिखे, उसे मारो।

इस आंदोलन की एक और विशेषता थी—बड़े पैमाने पर मजदूरों, किसानों, ग्रामीण, शहरी, सभी समुदायों, वर्गों के लोगों और महिलाओं, छात्र-छात्राओं की इसमें हिस्सेदारी। आंदोलन जनता के हाथ में था, स्थानीय स्तर पर उनका नेतृत्व भी। इससे पहले छात्रों, महिलाओं की टोलियाँ केवल धरनों पर बैठती थीं, प्रदर्शन-जुलूसों में भाग लेती थीं, अब उन्होंने जान हथेली पर लेकर ऑफिस, स्कूल-कॉलेज, मिल-फैक्टरियाँ, पोस्ट ऑफिस, रेलवे कार्यालय आदि बंद करवाना भी

शुरू कर दिया था और स्वतंत्रता का जयघोष करते हुए सरकारी इमारतों पर झंडा फहराना, अफसरों को जबरन त्यागपत्र देने के लिए मजबूर करना भी।

बिहार, बंगाल, असम, संयुक्त प्रांत, महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र, मैसूर मे तो छात्र-छात्राओं ने सरकारी मशीनरी का चक्का जाम ही कर दिया था। सीधे-सादे गाँववासी और कभी घर से बाहर न निकलनेवाली अनपढ़ घरेलू औरतें भी पीछे न थी, कहीं-कहीं नेतृत्व तक करने लगी थीं। सरकार ने भी विद्रोह को कुचलने और बागियों को सबक सिखाने के लिए कमर कस ली थी। निषेधाज्ञाएँ निकलीं, विशेष अध्यादेश लाए गए, विशेष अदालतें बैठाई गईं, व्यक्तिगत और सामूहिक जुर्माने किए गए। संपत्तियों की कुर्की-नीलामी, घरों को आग लगाने तक की बातें आम थी। लाठी-गोली तो रोज की, हर जगह की बात हो गई; पर लोग न डरे, न हारे। छात्र-छात्राओं में सर्वाधिक जोश था।

बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में तो सरकार नाम की चीज नही रह गई थी। वहाँ राष्ट्रीय सरकार की घोषणाएँ कर दी गईं। बलिया, मुजफ्फरपुर मुगेर, सतारा, तामलुक आदि स्थानों पर अंग्रेजों के पिट्ठुओं ने जनता के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था या वहाँ से भाग खड़े हुए थे। कई जगहों पर उग्र भीड ने हिंसा का भी सहारा लिया, जिसमें अनेक अंग्रेज मारे गए। बदले में अंग्रेजों ने भी दमन कार्यवाहियाँ तेज कर दी थीं। १८५७ की क्रांति के बाद देश इस समय एक और बड़ा बलिदान दे रहा था—दस हजार से अधिक लोग मारे गए तथा एक लाख से अधिक जेलों में बंद कर दिए गए।

दूसरी ओर जनता ने भी अपनी ताकत का अच्छा परिचय दिया। सैकडो गोरों और उनके पिट्ठुओं को भून दिया गया। इस दौरान दो सौ आठ पुलिस स्टेशन तीन सौ बत्तीस रेलवे स्टेशन और नौ सौ पैंतालीस पोस्ट ऑफिस क्रुद्ध भीड़ ने जला दिए। सारे देश में एक ही दृश्य था, जनता का उग्र प्रदर्शन और दोनों ओर से बदले की कार्यवाही। अधिकांश नेता जेलों में थे। जिसके जी में जो आता था, कर लेता था। निर्देशन केवल गुप्त रेडियो या भूमिगत नेताओं के गुप्त परचों से ही मिल पाता था, जो सब जगह पहुँच नहीं पाते थे। बहुत बार बीच में ही पकड़े जाते थे।

उस समय वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो थे, जिन्होंने ब्रिटिश प्रधानमत्री चर्चिल का सहारा पाकर दमन चक्र तेज कर दिया था। बातचीत द्वारा किसी सुलह-सधि या नेताओं की रिहाई की बात को ताक पर रख दिया गया था। इसलिए १९४२ का यह आंदोलन उग्र होने और ब्रिटिश सरकार को हिला देनेवाला होकर भी नेतृत्व व संगठित कार्यक्रम के अभाव में सफल नहीं हो सका। बस इतना हुआ कि

के विरुद्ध भारतीय जन आक्रोश और किसी भी कीमत पर स्वतंत्र होने का उनका संकल्प अंग्रेज शासकों के सामने उजागर हो गया उन्हें स्पष्ट पता चल गया कि भले ही इस समय वे दमन चक्र से इसे दबा दें पर इस देश को अब अधिक देर तक गुलाम नहीं रखा जा सकता।

१९४२ के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में छात्रों ने क्या-क्या किया, इसकी एक झलक रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपनी पुस्तक 'जंजीरें और दीवारें' में इस प्रकार प्रस्तुत की है—'छोटे-छोटे बच्चे भी बेधड़क तार और टेलीफोन के लंबे ऊँचे खंभे पर चढ जाते और उसमें लगे उजले डिब्बे को तोड़कर तार-टेलीफोन की लाइन खराब कर देते। रिक्शेवालों ने, घरेलू नौकरों ने भी अपने संगठन बना लिये और यातायात अवरुद्ध करने, अंग्रेजों की कोठियों में काम बंद कर देने जैसी कार्यवाहियाँ कर अपने ढंग से लड़ाई में हिस्सा लेने लगे। जहाँ पुलिस टुकड़ी या फौज टुकड़ी के आने की खबर मिलती, वहाँ ये लोग पहले ही पेड़ काटकर सड़क पर रास्ता जाम कर देते और आसपास रिक्शे खड़े कर देते कि पहले रास्ते रोके जा सकें और फिर अगर गोली चल जाए तो रिक्शों पर डाल घायलों को अस्पताल पहुँचाया जा सके।'

इन निहत्थों को भी 'देखते ही गोली मार दो' जैसे क्रूर दमन आदेशों का शिकार होना पड़ा। पर तब कौन परवाह कर रहा था जान जाने की भी! पुलिस के लोग, सैनिक अपना काम करते, ये अपना। सड़कों को खोद डालने, पुल तोड़कर रास्ते बंद करने के काम में लगे रहे लोग। उधर बंदूकें, मशीनगनें, इधर छैनी-हथौड़ी, गैंती, कुदाल का कमाल! जब रेलवे गोदाम लूटे गए, पुलिसवालों की राइफलें छीन ली गईं, तब कई जगह अपनी वरदी उतारकर पुलिस पनाह माँगती दिखी। जहाँ पुलिसवालों ने हेठी दिखाई, थानों में आग लगा दी गई और बाहर से कुंडी लगाकर उन्हें अंदर ही फूँक दिया गया। बंबई के गुप्त रेडियो ने कहा—'हाँ, यह इनकलाब है—'इनकलाब जिंदाबाद'।' अपनी एम.ए. की पढ़ाई बीच में छोड़कर उषा मेहता यह भूमिगत रेडियो चला रही थीं।

सर्वाधिक तेज आंदोलन बंगाल, असम, उत्तर प्रदेश व बिहार में चल रहा था। बंगाल के मिदनापुर और तामलुक में वालंटियर सेना विद्युत् वाहिनी तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों में अधिक सक्रिय थी। इन स्वयंसेवकों ने महिलाओं की सुरक्षा के उपाय किए और उनके साथ तामलुक में हुए अपमान का बदला लिया। कल्पना दत्त, वीना दास, उज्ज्वला मजूमदार, सुहासिनी गांगुली जैसी क्रांतिकारी युवतियाँ इस दौर में फिर सामने आ गई थीं। जिनपर पाबंदियाँ समाप्त नहीं हुई थीं, वे भूमिगत रहकर काम कर रही थीं।

असम की एक स्कूली लड़की कनकलता बरुआ ने पाँच सौ लोगों के जुलूस की अगुआई की और गोपुर थाने पर झंडा फहराने की कोशिश में पुलिस गोली से शहीद हो गई। उसके गिरते ही उसके एक के बाद एक साथी झंडा पकड़ते गए और शहीद होते गए। तब एक अन्य किशोरी रत्नप्रभा ने झंडा पकड़ा कि उसकी बूढ़ी दादी योगेश्वरी ने तुरंत धक्का दे उसे परे धकेल दिया। उसे बचाकर झंडा स्वयं पकड़ लिया और वह बहत्तर वर्षीया दादी वहीं गोली खाकर ढेर हो गईं। ऐसा ही कुरबानी का उत्साह था उस माहौल में जब बच्चे, किशोर, युवा, बूढ़े—सभी में मर मिटने की होड़ लगी थी

बिहार के सेक्रेटेरिएट पर झंडा फहराने के प्रयत्न में ग्यारह छात्रों के शहीद या घायल होने की रोमांचक कहानी हम इस लेख के प्रारंभ में जान चुके हैं। मलखा चक गाँव के स्वतंत्रता सेनानी रामविनोद सिंह की गिरफ्तारी के बाद उनकी दो किशोरी लड़कियों—शारदा और सरस्वती ने आंदोलन की बागडोर थामी और उन्हें ग्यारह व चौदह साल की लंबी सजाएँ सुनाई गईं। यह अलग बात है कि देश की आजादी के बाद लंबी सजा की यह अवधि अपने आप समाप्त हो गई।

उत्तर प्रदेश में बलिया जिले में आंदोलन बहुत अधिक उग्र था। स्थानीय लोगों के साथ मिलकर छात्र-छात्राओं ने जिला प्रशासन पर कब्जा कर लिया था। इसलिए वहाँ ब्रिटिश पुलिस द्वारा उनपर ज्यादा जुल्म ढाए गए (जिले के एक थाने पर झंडा फहराते ही गोलीकांड में कई छात्र शहीद हुए तथा चालीस घायल हुए थे। अन्य जगहों पर भी कई गोलीकांड हुए।) और महिलाओं पर भी अत्याचार किए गए। तब छात्र-छात्राओं की टोलियों ने गाँव-गाँव घूमकर उनकी रक्षा की और बदले में मार-काट भी की। कानपुर में छात्रों ने जुल्म के विरोध में डेढ़ महीना हड़ताल की। बनारस में एक जुलूस की अगुआई छात्राएँ कर रही थीं। जब गोली चलने का हुक्म हुआ, छात्राओं को पीछे धकेल छात्र स्वयं सीना खोल आगे आ गए। यह थी हमारी परंपरा, वक्त पर भाइयों द्वारा बहनों की रक्षा की। तब बहनों ने भी अजब साहस दिखाया। उन्होंने घुड़सवार सैनिकों के घोड़ों की लगामें पकड़ लीं और सवारों को पटककर नीचे गिरा दिया। इसके बाद कई राउंड गोलियाँ चलीं और अनेक छात्र-छात्राएँ घायल हो गए। बाद में छात्राओं पर गोली चलाने के कारण डिप्टी कमिश्नर को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा था।

पहले के सारे आंदोलनों में दक्षिण भारत अधिक सक्रिय नहीं था। पर १९४२ के इस आंदोलन में दक्षिणी राज्यों के छात्रों ने भी कमाल कर दिखाया। कर्नाटक में छात्र-जुलूसों पर लाठी चार्ज रोजमर्रा की बात थी। कुमठा में पच्चीस

छात्राए घायल हुइ और सेतालीस छात्रो का गभीर चाट आइ ९ अगस्त स २० सितबर तक छात्र छात्राओ की ये गतिविधियाँ जारा रहीं फिर तितर बितर कर दी गई। २३ अक्तूबर को धारवाड़ की दो छात्राएँ—हेमलता और गुणवती अदालत मे घुस जज की सीट पर ही तिरंगा फहराने लगीं। उन्होंने जज को आठ दिन की मोहलत दी कि इस बीच वह इस्तीफा दें, वरना उन्हें सबक सिखाया जाएगा। पुलिस बुला ली गई। गुणवती भागने में सफल हो गई, पर हेमलता पकड़ी गई।

मैसूर में छात्रों ने सभी अंग्रेज अधिकारियों को लिखित आदेश देकर इस्तीफा दने के लिए कहा। मजिस्ट्रेट द्वारा इनकार करने पर छात्र टोली ने उसके कागज-पत्र छीन लिये और जबरदस्ती उसे रिटायर कर दिया। खबर मिलते ही पुलिस वहाँ पहुँची तो छात्र-छात्राओं ने उसे घेरकर पुलिसवालों की टोपियाँ उतरवा लीं और उन्हे जबरन गांधी टोपियाँ पहना दीं। अजीब समां बँध गया था वहाँ, जिसे देख जनता की भीड़ मुसकरा रही थी। इसी समय गोली-चालन से कुछ छात्र घायल हुए, जिनमें एक छात्रा भी थी। गाँववालों ने घेरकर गोली चलानेवाले इंस्पेक्टर को वही मार डाला। इंस्पेक्टर की हत्या के मुकदमे में चौदह लोगों को फाँसी हुई और तेईस को आजीवन कारावास, जिनमें तीन महिलाएँ भी थीं।

आंध्र में भी किसान, मजदूर, महिलाएँ, छात्र-छात्राएँ आंदोलन में भाग ले रहे थे। गुंटूर के टेनाली जिले में भी छात्र-छात्राओं ने पुलिस की पगड़ियाँ उतरवा उन्हे जबरदस्ती गांधी टोपियाँ पहनाईं। रेलवे स्टेशन पर कब्जा कर लिया। बुकिंग क्लर्कों की छुट्टी कर दी। टेलीफोन के तार काट दिए। टिकट व नोटों सहित स्टेशन की इमारत फूँकी। मद्रास से वहाँ पहुँची एक रेलगाड़ी के सभी मुसाफिरों को उतारकर गाड़ी को आग लगा दी। बाद में जिला मजिस्ट्रेट के वहाँ पहुँचने पर गोली चली, जिसमें कुछ छात्र मारे गए तथा कई जख्मी हुए। अन्य जगहों पर भी रेल पटरियाँ उखाड़ी गईं। कचहरियों, थानों पर कब्जा कर झंडे फहराए गए। कहीं-कहीं थाने व अदालतें फूँक दी गईं। भीमावरम् में रेवेन्यू ऑफिस पर झंडा फहराने के बाद तैनात अफसर को झंडे को सलामी देने के लिए मजबूर किया गया। इस कारण वहाँ भी बाद में लोगों पर पुलिस ने बहुत जुल्म ढाए।

केरल में जगह-जगह छात्रों ने हड़ताल कराई। कॉलेज बंद करवा दिए गए। कहीं थानों-कचहरियों पर पिकेटिंग, कहीं तोड़-फोड़, कहीं पुलिस से मार-पीट तो कहीं सरकारी इमारतों में आगजनी। फलस्वरूप कई दिनों तक कचहरियाँ बंद रहीं। मालाबार की पुलिस द्वारा जबरदस्त लाठी चार्ज से अनेक छात्र घायल हुए। प्रांत की कांग्रेस कमेटी गैर कानूनी करार दे दी गई। महिलाओं के चरखा केंद्र तक

बंद कर दिए गए। अनेक छात्राएँ भी पिकेटिंग करते पुलिस की मार से घायल हुईं।

तमिलनाडु में आंदोलन पर्याप्त सफल रहा। जुलूस, सभाएँ, मजदूर हड़तालें, कॉलेजों का बहिष्कार, तोड़-फोड़ की कार्यवाहियाँ—सभी कुछ रोज की बात थी। लाठी चार्ज भी यहाँ-वहाँ होते रहते थे। मद्रास शहर में अगुआई छात्रों के हाथ ही थी। कलकत्ता जानेवाली गाड़ी कई दिन तक नहीं चलने दी गई। रेल कर्मचारियों को हड़ताल करने के लिए बाध्य किया गया। रेलवे मजदूर भी इस कदर संगठित थे कि आंदोलनकारी छात्रों को पटरियाँ उखाड़ने की जरूरत नहीं पड़ी, उन्होंने स्वय ही रेलों का चलना बंद कर दिया। त्रिची जिले में अधिक तोड़-फोड़ हुई। मन्नागुडी स्टेशन जला दिया गया। रामनाथ जिले में थानों पर अधिकार कर लिया गया। जेलें तोड़कर कैदियों को मुक्त कर दिया गया। कई जगह सरकारी इमारतों में आग लगाई गई। वहाँ बहत्तर घंटे के लिए 'बागी सरकार' स्थापित हो गई। फिर फौज बुला ली गई और कब्जा वापस लेने के साथ दमन कार्यवाही भी तेज कर दी गई। गाँव लूटे गए। सामूहिक जुर्माने किए गए। घरों में आग लगा दी गई। लगभग बीस गाँव तबाह हुए। अनेक परिवारों को अपार कष्ट झेलने पड़े।

इस तरह हर जगह उग्र आंदोलन, तोड़-फोड़ की कार्यवाहियाँ, कहीं-कहीं बागी सरकारों की स्थापना तक, फिर दमन कार्यवाहियाँ; पर लोग हताश नहीं हुए। उन्हें लगा, हमने कुछ किया, आजादी की कीमत चुकाई। शहादतों पर भी शोक नहीं मनाया जाता था। उसपर गर्व किया जाता था और जेल की लंबी सजाओं के बजाय युवा लोग फाँसी पर चढ़ना या सीने पर गोली खाना पसंद करते थे। देश के लिए त्याग और कुरबानी में परस्पर होड़ लगी थी।

काश! आज की युवा पीढ़ी अपने इस इतिहास से कुछ प्रेरणा ले सके। कम-से-कम जाने तो सही कि जो आजादी आज वे भोग रहे हैं, उसके लिए पूर्व पीढ़ी ने कैसी-कैसी कुरबानियाँ दी थीं। १९४२ का 'भारत छोड़ो आंदोलन' अंग्रेजी राज को वह अंतिम बड़ा झटका था, जिसके फलस्वरूप आजादी निकट आ सकी थी; वरना तो हम पौने दो सौ साल से लड़ ही रहे थे—कभी असफल क्रांति करके, कभी याचिकाओं द्वारा तो कभी असहयोग आंदोलन व सत्याग्रह करके। इस लड़ाई में गांधीजी के अहिंसक सत्याग्रहों, सशस्त्र क्रांति में विश्वास करनेवाले क्रांतिकारियों की गुप्त कार्यवाहियों, आजाद हिंद फौज का अपने ढंग से देश को आजाद कराने का प्रयत्न—सभी गतिविधियों का समान योगदान है; क्योंकि सभी की मंजिल एक थी, रास्ते भले ही अलग थे। १९४२ का उग्र आंदोलन तो जैसे सभी तरीकों का सम्मिश्रण था। नेताओं के जेलों में होने के कारण नेताविहीन लोग अपने-अपने

हिसक अहिसक सभी तरीका स लड रहे थे युवाओ और छात्र छात्राओ म ज्यादा जाश था यद्यपि इस आदोलन म किसान मजदूर महिलाएँ सभी शामिल थ पर कमान जैसे छात्रा क हाथ ही आ गइ था। इसीलिए तोड़-फोड़ की कार्यवाहियाँ ज्यादा हुई और अंग्रेज सरकार दमन चक्र चलाकर भी भीतर से दहल गई थी। उसे अपनं राज का अंत निकट दिखाई दे गया था।

यहाँ आज की किशोर-युवा पीढ़ी को एक बात और अच्छी तरह समझ लेनी है कि आंदोलन, क्रांति और आतंकवाद में क्या अंतर है? आतंकवादियो के स मने कोई उच्च लक्ष्य नहीं होता, देश के लिए जानें कुरबान करना तो बहुत बड़ी बात है। अपने स्वार्थवश लूट-खसोट करना या भाड़े पर दूसरे देश में घुसपैठ कर जान-माल की हानि करना अथवा राजनीतिक स्वार्थ से विरोधियों को नुकसान पहुँचाना, राजनीतिक हत्याएँ करना आतंकवाद है। अपने देश को गुलामी से आजाद कराना और उसके लिए कुरबानियाँ देना आजादी की लड़ाई ही कहलाएगी। क्रांति का अर्थ भी मात्र तोड़-फोड़ नहीं होता, उसके पीछे एक दर्शन, एक विचार भी होता है। वैचारिक क्रांति के बिना सशस्त्र क्रांति का कोई अर्थ नहीं होता। यदि क्राति और स्वतंत्रता के लिए दी गई कुरबानी का अर्थ जान-समझकर अपने इस कुरबानी के इतिहास से प्रेरणा ले आज के किशोर-युवा इसी समर्पण भावना से देश-निर्माण में लग सकें, तो न आतंकवाद रहे, न ही भ्रष्टाचार; और देखते-ही-देखते देश का नक्शा बदल जाए। छात्र शक्ति, युवा शक्ति देश की बहुत बड़ी शक्ति होती है। क्या आज की नई पीढ़ी अपनी इस शक्ति को पहचानकर वर्तमान भ्रष्ट और अपसंस्कृति के माहौल को बदलने में उसका सदुपयोग करना नहीं चाहेगी? यदि वह ऐसा कर सके तो एक बार फिर इतिहास बदलने का सेहरा उसके सिर बँध सकता है।

□

नौजवान उत्साहित हो बार बार हंस हंसकर फांसी के फंदे को चूमे जा रहा था और आसपास खड़े गिनती के लोग ठिठककर उसे हैरत से देख जा रहे थे . फिर जब जल्लाद ने फाँसी का फंदा उसके गले में डालते हुए उसके मुँह को कपड़े से ढकना चाहा, उसने तुरंत मुँह पर से कपड़ा हटा फंदे को पकड़ लिया—''मैं यह हार अपने गले में खुद डालूँगा।'' और उसे वैसा करने दिया गया। फिर एक बार जोर की आवाज—'वंदे मातरम्' और सब एक झटके में समाप्त।

यह घटना घटी थी २१ जनवरी, १९४३ को सिंध की सक्खर सेंट्रल जेल मे और वतन की आजादी की खातिर मर मिटनेवाला यह नन्हा सिपाही था—हेमू कलानी, जिसके मन में बहुत छोटी उम्र में देशभक्ति का अंकुर फूट गया था। भगतसिंह को फाँसी दिए जाने पर यह अंकुर कुछ इस तरह विकसित हुआ—''माँ मै भी भगतसिंह की तरह फाँसी पर चढ़ भारत माता को आजाद कराऊँगा।'' माँ ने अल्हड़पन की बात हँसकर टाल दी थी। पर मैट्रिक तक आते-आते हेमू के मन का यह सपना वास्तविकता में बदल चुका था। सक्खर में 'स्वराज सेना' गठित कर उसके झंडे तले हेमू अपने सैकड़ों साथी छात्रों को अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए तैयार कर चुका था।

अठारह वर्ष की उम्र में उसने अंग्रेजी राज का तख्ता पलटने के लिए बड़ा कारनामा किया; पर दुर्भाग्य से पकड़ा गया। 'मार्शल लॉ कोर्ट' के तहत देशद्रोह के अपराध में उसपर मुकदमा चला और उम्र कैद की सजा सुनाई गई। पर सिंध के क्रूर मुख्यालय अधिकारी कर्नल रिचर्डसन के मन में क्रांतिकारियों के प्रति गहरी घृणा के कारण उम्र कैद की सजा मृत्युदंड में बदल दी गई। इस अमानवीय कृत्य की तीखी प्रतिक्रिया हुई। हेमू की जीवन रक्षा के लिए सिंध के चोटी के नेता एक हो गए। उसे बचाने की पुरजोर कोशिशें हुईं; पर रिचर्डसन की हठधर्मिता के कारण सारे प्रयास बेमानी हो गए। अंतिम निर्णय फाँसी के पक्ष में ही रहा। हेमू की स्वय की फाँसी की इच्छा भी आड़े आई और अंततः हेमू को फाँसी दे दी गई।

शहादत के समय हेमू कलानी की उम्र उन्नीस साल से कुछ महीने कम ही थी। पर स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारी इतिहास में उसका नाम अमर है। भारत सरकार ने १८ अक्तूबर, १९८३ को हेमू कलानी की स्मृति में एक डाक टिकट जारी किया था, जिसे तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्वयं जारी किया था और इस अवसर पर हेमू की माँ जेठाबाई को बुलाकर उनका सम्मान भी किया था।

हेमू कलानी का जन्म ११ मार्च, १९२४ को 'सक्खर' में हुआ था। पिता पेसूमल कलानी और चाचा मंघाराम कलानी स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय थे। माँ

जेठाबाई धार्मिक विचारोवाली आस्थावान् महिला थी जिन्होने बालक हेमू मे सेवा एव त्याग की भावना जगाई और पिता, चाचा ने उसे राष्ट्रीयता व देशभक्ति के सस्कार दिए। फिर भी बचपन से क्रांतिकारी गतिविधियों में रुचि लेने के कारण परिवार के लोग उसे लेकर कुछ चिंतित व भयभीत रहते थे और उसे गांधीवादी विचारधारा की ओर मोड़ते थे। पर भगतसिंह की कहानी और उनकी शहादत ने हेमू के मन में प्रबल प्रेरणा जगाई। 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान उसे मौका भी मिल गया, जब गांधीजी ने भी जेल जाते-जाते देशवासियों से कह दिया था—'करो या मरो।' विशेष रूप से किशोर, युवा उत्साह बड़े पैमाने पर तोड़-फोड़ की कार्यवाहियो द्वारा अंग्रेजों को जल्दी-से-जल्दी इस देश से भगा देने पर उतर आया था।

ऐसे में जब सिंध के विद्रोह को कुचलने के लिए सैनिकों और हथियारो से भरी एक रेलगाड़ी सिंध भेजने की खबर आई तो क्रांतिकारियों ने निर्णय लिया कि इस रेलगाड़ी को रास्ते में ही गिराना है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए हेमू ने आगे बढकर जिम्मा लिया। अपनी स्वराज सेना से उसने केवल दो साथी चुनकर अपने साथ लिये और औजार लेकर अँधेरी रात में सक्खर से कुछ दूर रेलमार्ग की पटरियाँ उखाड़ने के लिए पहुँच गए। २३ अक्तूबर, १९४२ की रात, जब वे 'फिश प्लेटें' खोलने के काम में जुटे थे, पुलिस की एक गश्ती टुकड़ी ने उन्हें पटरी पर झुके देख लिया। सिपाहियों को दूर से देख दोनों साथी जैसे-तैसे भाग निकले; पर हेमू पकड़ा गया। साथियों का पता लगाने के लिए हेमू को जेल में तरह-तरह की यातनाएँ दी गई—बेंतों की मार, बर्फ की सिल्लियों पर लिटाना, भूखा-प्यासा रखना; पर हेमू ने जबान नहीं खोली। सीना तानकर अपना अपराध स्वीकार किया कि वे ब्रिटिश राज्य का खात्मा चाहते हैं, इसके लिए वे मरने-मारने को तैयार हैं, उन्हें जो करना है, कर ले, हेमू न सजा से डरता है, न मौत से। वह तो भारत माता की आजादी के लिए अपनी जान कुरबान करना चाहता है।

बस, आगे की कहानी तो सभी जानते हैं कि फाँसी पर चढ़ना हेमू का सपना था, जो पूरा हो गया। मरने से पहले उसने अपने माता-पिता से आशीर्वाद माँगा कि वे रोएँ नहीं, उसे हँसते-हँसते बिदा करें और आशीष दें कि वह फिर भारतभूमि पर ही जन्म ले। हेमू का शव बड़ी मुश्किल से ब्रिटिश अधिकारियों ने परिवार को सौपा; पर जब शाम को शवयात्रा निकली तो भरी आँखों के साथ जैसे सारा सक्खर ही उमड़ पड़ा था। वह स्मृति-संध्या आज भी इतिहास की धरोहर के रूप में सुरक्षित है।

□
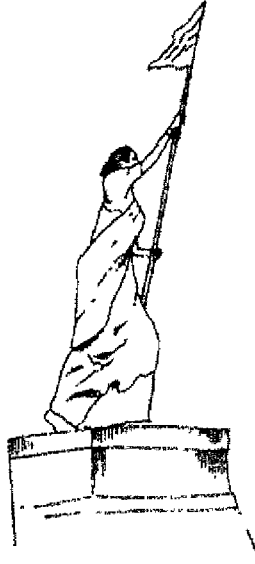
सत्याग्रही शहीद

कनकलता

कनकलता

क्रांतिकारियों का जीवन प्रायः उत्तेजना, तनाव, उथल-पुथल और लुका-छिपी से भरा हुआ है। पर कनकलता के साथ ऐसा कुछ नहीं था। लेकिन उसने अपने छोटे से जीवन में जो कुछ भी कर दिखाया, वह एक उल्का की तरह आज भी युवा पीढ़ी को अँधेरे में रोशनी दिखाने में समर्थ है।

स्वतंत्रता संग्राम में अपना जीवन उत्सर्ग करनेवालों को दो रूपों में याद

किया जाता है क्रातिकारी शहीद और बापू के अहिसा व त्याग के आदर्शो की छाया मे सत्याग्रही शहीद। १९४२ के आदोलन मे दोनो रूप घुले-मिले थे। अपना जीवन उत्सर्ग करनेवाली कनकलता इसी श्रेणी के शहीदों में आती है।

९ अगस्त, १९४२। सोया देश जैसे करवट लेकर जाग उठा हो। 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के गगनभेदी नारे गूँजने लगे। महात्मा गांधी सहित सभी बड़े नेता जेलों में ठूँस दिए गए। यहाँ-वहाँ, सभी जगह तोड़-फोड़, विध्वंस। पर एक वर्ग अभी भी गांधीजी की अहिंसा नीति में विश्वास रखता था। सत्याग्रह करते हुए शातिपूर्वक विरोध की आग में कूद रहा था।

सितंबर महीने की २० तारीख को स्थानीय कांग्रेस ने सुबह दस बजे गोपुर (असम) थाने पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने का संकल्प किया। पूर्व और पश्चिम की ओर से ध्वज लेकर दो दल चले। पश्चिमी टोली की नायिका थी सोलह वर्षीय बाला कनकलता। राष्ट्रीय ध्वज हाथ में लिये कनकलता के नेतृत्व में तरुण-तरुणियों की एक टोली थाने की ओर बढ़ रही थी—'अंग्रेजो भारत छोड़ो'। बरंगावाड़ी गाँव से चलता पाँच हजार लोगों का यह एक मील लंबा जुलूस मुक्ति के स्वप्न देखता और भारत की जय-जयकार करता धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

थाने के बाहर सैकड़ों सिपाही हाथों में बंदूकें लिये तैनात थे। उनका रौद्र रूप देख सत्याग्रही टोली में जरा दहशत आती दिखाई दी कि कनकलता ने मुड़कर उन्हें ललकारा—"भाइयो, बहनो! माँ के दूध को लजाना मत। बढ़ो और भारत माता की बेड़ियाँ काट दो। अपना राष्ट्रीय ध्वज फहराओ। विदेशी शासन की गुलामी के प्रतीक यूनियन जैक को उखाड़ फेंको। आज से अच्छा अवसर आपको फिर कभी नहीं मिलेगा।"

नेत्री कनकलता की यह जोशीली तकरीर सुनकर साथी निर्भय हो एक स्वर मे चिल्ला उठे—"जन्मभूमि के उद्धार के लिए हम अपने प्राणों की बलि देने को तैयार हैं, बहन। अपने को अकेली मत समझो।" इधर यह उत्सर्ग की तैयारी चल रही थी, उधर अत्याचारी शासकों की खैरख्वाह पुलिस के बेरहम हाथ अपनी बंदूकों पर मचल उठे थे। राइफलों ने गोलियाँ उगलीं। 'धाँय-धाँय' और एक गोली उसी पश्चिमी दल की फूल-सी तरुण नेत्री की छाती को चीरती हुई निकल गई। कनकलता शहीद हो गई। भारत माता की जय गूँज उठी।

निष्ठुर पुलिस की उच्छृंखल गोलीवर्षा ने व्यवस्थित भीड़ को तितर-बितर कर दिया। फिर भी कनकलता का बलिदान खाली न गया। कई साहसी युवको ने और भी उत्साहित हो आगे बढ़ थाने के ऊपर राष्ट्रीय ध्वज फहरा ही दिया।

की अंतिम इच्छा पूरी हुई सत्याग्रही टोली की लाज रह गई अंग्रेजों से मुक्ति की इच्छा तत्काल फलवती नहीं हुई पर उस आंदोलन ने दासता की अवधि को कम जरूर कर दिया

कनकलता का जन्म २६ मई, १९२६ को असम के बरंगाबाड़ी गाँव में हुआ। पिता का नाम कृष्णकांत बरुआ तथा माता का नाम कर्णेश्वरी था। कनकलता बचपन से ही तीव्र बुद्धि तथा असाधारण प्रतिभावाली बालिका थी। पाँच वर्ष की आयु में उससे माँ का संरक्षण छिन गया। अभी वह तीसरी कक्षा में ही पढ़ रही थी कि सिर से पिता का साया भी उठ गया। तभी छोटे-छोटे भाई-बहनों की देखभाल के लिए उसे अपनी पढ़ाई छोड़नी पड़ी। घर में रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रंथों का अध्ययन करके तथा महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़कर ही उसने बहुत कुछ सीख लिया था। कीर्तन सभाओं के बाद धीरे-धीरे उसने कांग्रेस की सभाओं में भाग लेना शुरू कर दिया था। स्वाधीनता के लिए चल रहे आंदोलन की गतिविधि का वह बड़े ध्यान से अध्ययन करती और नेताओं के आह्वान को श्रद्धा से सुनती। स्वदेश के प्रति इसी तरह उसकी आस्था दृढ़ होती गई और उसके तरुण हृदय में देशप्रेम की भावनाएँ हिलोरें लेने लगीं।

फिर ८ अगस्त को जब भारतीय कांग्रेस में स्वीकृत 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव ने देश भर में हलचल मचा दी, तो उसी दिन कनकलता ने भी प्रण ले लिया कि समय पडने पर देश की स्वतंत्रता के लिए वह अपने प्राणों की बाजी लगाने से भी नहीं चूकेगी। अगले दिन ९ अगस्त को आंदोलन शुरू हो गया था और इसके मात्र डेढ़ महीने बाद ही कनकलता के लिए वह बलिदानी क्षण आ पहुँचा था।

गोलियों की बौछार में एक सैनिक की तरह सीना ताने आगे बढ़ते जाना और लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उत्सर्ग हो जाना एक ऐसी शहादत है, जो भारतीय युवा जगत् के लिए सदा-सर्वदा प्रेरणास्रोत बनी रहेगी।

□

बलिया का शहीद

कौशल कुमार

कौशल कुमार

अगस्त क्रांति में बलिया ने बहुत नाम कमाया। १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में प्रथम आहुति भी बलिया के मंगल पांडे ने ही दी थी। 'भारत छोड़ो आदोलन' के दौरान बलिया में बगावत का झंडा उठाकर कुछ दिनों के लिए अपनी सरकार ही कायम कर ली गई थी। ९ अगस्त, १९४२ को जैसे ही गांधीजी 'करो या मरो' का नारा देकर जेल चले गए और उसी रात देश के बड़े नेता पकड़कर जेल में

डाल दिए गए, इस घटना की गूंज सारे देश में पहुंची बलिया में इसकी प्रतिक्रिया कुछ अधिक बुलंद रूप में सुनाई दी

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रों ने विश्वविद्यालय में सभा करके फैसला किया कि अपने-अपने क्षेत्रों में जाकर आजादी का बिगुल बजाया जाए। इसी फैसले के अनुसार एक टोली रेल से बलिया की ओर रवाना हुई। यह टोली सैदपुर (गाजीपुर) तक ट्रेन से गई और फिर गाँवों में छोटी-छोटी सभाएँ कर गांधीजी का संदेश सुनाती, ग्रामीणों को कुछ करने के लिए उकसाती आगे बढ़ती गई।

इन छात्रों ने ट्रेनों का अपहरण किया, उन्हें तिरंगी झंडियों से सजाया और रास्ते के रेलवे स्टेशनों पर रोककर अंग्रेजी राज की निशानियों को नष्ट करने का आह्वान करते हुए अपने-अपने ठिकानों पर पहुँचे। छात्राएँ भी ट्रेनों से आतीं और ग्रामीणों को ओजस्वी भाषणों से ललकारतीं—"अंग्रेजों को भगाने के लिए कुछ करो, नहीं तो ये चूड़ियाँ पहन लो।" ग्रामीणों की भीड़ स्टेशनों पर टूट पड़ती। छात्र-छात्राएँ आगे बढ़ जाते। फौजी रसद लिये एक ट्रेन बिलथरा रोड स्टेशन पर आई। इसे रोककर लूट लिया गया और ग्रामीण रसद को अपनी बैलगाड़ियों में भरकर ले गए। रेलवे स्टेशन फूँकने, सरकारी इमारतों पर हमले कर अफसरों को बाहर निकालने और थानों पर तिरंगा फहराने का दौर शुरू हो गया। बाँसडीह तहसील पर कब्जा कर बागियों ने गजाधर लुहार को वहाँ का नया तहसीलदार नियुक्त कर दिया। उधर आंदोलनकारियों ने चीतू पांडे को बलिया का कलेक्टर नियुक्त कर दिया। बलिया नगर से यह आंदोलन बलिया जिले के अन्य स्थानों पर भी फैल गया।

जिले के एक आंचलिक थाने रसड़ा पर १७ अगस्त को हमला बोलकर आंदोलनकारियों ने तिरंगा झंडा फहराना चाहा। वहाँ का थानेदार आसपास का माहौल देखकर सीधे गोली चलाने से हिचक गया। उसने चतुराई से काम लिया। पहले उसने आंदोलनकारियों को तिरंगा झंडा फहराने दिया। स्वयं गांधी टोपी पहनकर 'महात्मा गांधी की जय' बोलने लगा। आंदोलनकारियों ने समझा, यह वतनपरस्त हो गया है। उन्होंने थानेदार से थाने में रखे हथियारों की माँग की। थानेदार ने उनसे कहा, "आप लोगों में से दस पाँच लोग अंदर आ जाएँ और हथियार ले जाएँ। शेष लोग बाहर रहेंगे।" जब कुछ छात्र थाने के भीतर पहुँचे तो थानेदार ने उन्हें एक कमरे में बंद कर स्वयं थाने की छत पर पहुँचकर शेष भीड़ पर गोलीवर्षा शुरू कर दी। इस बीच कौशल कुमार नाम का किशोर थाने पर चढ़कर तिरंगा फहरा चुका था। थानेदार ने गोली चलाकर उसे गंभीर रूप से घायल कर

दिया। कौशल कुमार के गिरते ही भीड़ बेकाबू हो थाने पर पथराव करने लगी। पथराव करती टोलियों पर अंधाधुंध गोली चलाई गई। कई छात्र शहीद हो गए और अनेक जख्मी हुए। घायल कौशल ने भी बाद में दम तोड़ दिया।

गोलीकांड के बाद जोरदार बारिश होने लगी। तब तक पुलिस की गोलियाँ भी खत्म हो गई थीं। भीड़ को बेकाबू होते देख थानेदार और उसके साथी पुलिसजनों ने देशभक्तों के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। छात्रों ने थाने के भीतर बंद अपने नेताओं को मुक्त करा लिया और थाने में आग लगा दी। थानेदार व पुलिसवाले भी मारे जाते; लेकिन मौका पाकर उन्होंने अपनी वरदियाँ उतारीं और ग्रामीणों के वेश में भागकर बच निकले।

कौशल कुमार और अन्य शहीद छात्रों की मौत का बदला लिया गया। बाँसडीह में सिपाहियों को क्रांतिकारियों ने पकड़कर चौबीस घंटे तक हवालात में बंद रखा। सरकारी इमारतों, कागजातों को फूँक दिया गया। अनेक स्थानों पर पुलिस को मार-पीटकर भगा दिया गया। इस तरह १९ अगस्त तक पूरे बलिया जिले में अंग्रेजी शासन समाप्त कर दिया गया था।

कौशल कुमार व उसके साथियों की शहादत के कारण ही बलिया को स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

□

जितने साल की उम्र, उतने साल की सजा

शारदा और सरस्वती

बिहार के दिघवारा क्षेत्र में एक गाँव है—मलखाचक। इस गाँव ने स्वतंत्रता सग्राम में अनेक आहुतियाँ दीं। मलखाचक गाँव के शौर्य का एक इतिहास है। आल्हा-ऊदल के समकालीन मलखा कुँवर राजस्थान से चलकर मुगलसराय होते हुए पटना आए थे। वहाँ से गंगा तैरकर दिघवारा। मलखाचक गाँव उन्हीं मलखा कुँवर ने बसाया था। इस तरह इस गाँव के साथ शौर्य की एक परंपरा पहले से ही जुड़ी थी। १८५७ की क्रांति के समय भी इस गाँव के लोगों ने आंदोलन में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था।

गांधीजी के असहयोग आंदोलन के दिनों में एक ओर जहाँ इस गाँव मे चरखा चलता था, वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारियों की मदद के लिए गाँव के घर-घर में बम भी बनते थे, चंदा भी इकट्ठा किया जाता था। वहाँ के आसपास के क्षेत्र के सभी गाँवों से सर्वाधिक नौजवान आंदोलन के लिए आगे आए और १९४२ के 'भारत छोड़ो' अभियान में तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों में लग गए थे। यहाँ तक कि दर्जनों छोटे स्कूली लड़के-लड़कियाँ भी उनके साथ हो लिये थे।

प्रसिद्ध क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद और बंगाल के सूर्यसेन भी बिहार में इस गाँव को अपना केंद्र मानते थे। गाँव के एक प्रमुख व्यक्ति रामविनोद सिंह १२ अगस्त को रेल-तार काटो अभियान में अगुआई करते गिरफ्तार कर लिये गए थे। अंग्रेजों को जब पता चला कि यहाँ बम बनते हैं तो २० अगस्त को पूरे गाँव को घेर लिया गया। रामविनोद सिंह के घर को डायनामाइट लगाकर उड़ा दिया गया। उनका सारा सामान जला दिया गया। परिवार के शेष सदस्य बे-घर, बे-सामान होकर दाने-दाने के मोहताज हो गए। किसीने उनकी मदद इसलिए नहीं की कि मदद करनेवालों के लिए 'देखते ही गोली मार दो' का क्रूर आदेश

जारी कर दिया गया था

शारदा और सरस्वती इन्ही रामविनोद सिह की दो किशोरी लड़किया था पिता के जेल जाने और उनका घर उड़ाने के बाद तीन दिन तक तो गाँव में सन्नाटा छाया रहा। फिर इन दोनों कुँआरी लड़कियों के नेतृत्व में मलखाचक गाँव का बच्चा-बच्चा बाहर निकल आया। हर कोई शहादत के लिए तैयार। अब कर ले ब्रिटिश सरकार, जो उसे करना हो!

तीन दिन से भूखी-प्यासी ग्यारह और चौदह साल की दो लड़कियाँ जब नेतृत्व के लिए जान हथेली पर लेकर आगे आ जाएँ तो अन्य गाँववासी कैसे पीछे रह सकते हैं! दोनों बहनें झंडा हाथ में लिये उसे दिघवारा थाने पर फहराने के लिए उस ओर बढ़ीं कि गिरफ्तार कर ली गई। उनकी उम्र कम न होती तो उन्हें गोली मार दी गई होती। दोनों को उनकी उम्र के बराबर ग्यारह और चौदह साल की सजा सुनाई गई। पिता जेल में थे। घर व सामान फूँक दिया गया था। दोनों बहनें खुशी-खुशी जेल जाने के लिए तैयार हो गई। यह अलग बात है कि देश आजाद होने के बाद १९४२ के लंबी सजा पाए सभी कैदी छोड़ दिए गए थे। पर इतनी छोटी उम्र और इतनी लंबी सजाएँ! 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान अंग्रेजों की क्रूर दमन नीति का इसीसे अंदाजा लगाया जा सकता है।

एक विडंबना और है इस गाँव की। मलखाचक गाँव में सर्वाधिक लोग पीड़ित किए गए, सर्वाधिक शहीद हुए; पर अंग्रेजों ने इसे अपने रिकॉर्ड में शामिल नही किया। शायद शर्म के कारण ही। इसका परिणाम—दिघवारा प्रखंड में बने शहीद स्मारक में बीस स्वतंत्रता सैनिकों के नाम खुदे हैं, जिनमें मलखाचक गाँव के एक भी शहीद का नाम नहीं है। बहुत दिनों बाद खोजकर्ताओं ने इस गाँव की कुरबानियों को सामने लाया, तब शारदा और सरस्वती भी स्वतंत्रता सेनानी के रूप मे पहचानी गईं, अन्यथा दोनों अनचीन्ही रह जातीं। ऐसे और भी कई अनचीन्हे नाम है जो सामने आने चाहिए। मलखाचक गाँव की ये कहानियाँ जब कई पत्रों में छपी तब इनकी सुधि ली गई, अन्यथा पूरा घर-परिवार कुरबान कर देनेवाले स्व रामविनोद सिंह की पूरी कहानी भी इतिहास के अँधेरे में खो जाती।

□

तारा रानी श्रीवास्तव

तारा रानी श्रीवास्तव की कहानी एक देशभक्त परिवार की करुण कहानी है। दादा देशभक्त विद्वान्, पिता स्वतंत्रता सेनानी, पति क्रांतिकारी। इसकी पूरी कीमत चुकानी पड़ी इस परिवार को।

बच्ची तारा डेढ़ वर्ष की थी कि एक ब्रिटिश गुप्तचर ने उसके पिता का दोस्त बन उन्हें खीर में जहर देकर मार डाला था। दादा ने बच्ची में साहित्यिक और देशभक्ति के संस्कार भरे। फिर एक देशभक्त वर खोजकर उसका विवाह कर दिया।

उस समय के रिवाज में विवाह के समय तारा की उम्र केवल बारह वर्ष थी। उनके अनुसार, "पहली रात ही पति फुलेना प्रसाद ने पूछा, 'घर-गृहस्थी ही देखोगी कि मेरे साथ देश का काम भी करोगी?' मेरे बाबा ने मुझे पूरा इतिहास पढ़ा रखा था। मैंने कहा, 'मैं भी देश का काम करूँगी।' पति ने कहा, 'सोच लो, यह तो सिर का सौदा है। सुख-आराम, इज्जत, प्राण तक खोने पड़ सकते हैं। सत्ता का शस्त्र सत्याग्रही की देह पर ही टूटेगा; पर तुम साथ नहीं दोगी तो शादी मेरे गले का फंदा बन जाएगी।' मैंने तुनककर कहा, 'देख लीजिएगा, न झुकूँगी, न रुकूँगी।' पति से सुहागरात को किया वादा अभी तक निभा रही हूँ।"

तारा रानी जनवरी १९४१ में 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' कर स्वयं भी जेल गईं। पति-पत्नी दोनों जेल में थे। जुन १९४२ में छूटकर आईं तो माँ, बाबा दोनों बीमार मिले। माँ तो मृतप्राय थीं।

फिर आया १९४२ का 'भारत छोड़ो आंदोलन'। १६ अगस्त, १९४२ को एक जुलूस में तारा रानी, उनके पति श्री फुलेना प्रसाद, उनकी माँ, उनके दादा—सभी शामिल थे। जुलूस पर भीषण लाठी चार्ज हुआ। गोलियाँ भी चलीं। उनके बाबा की छाती पर बंदूक के कुंदे से वार किए गए। माँ पर लाठियाँ पड़ीं। फिर उनके दाहिने

हाथ में एक गोली भी आकर लगी। तारा रानी स्वयं भी लाठियों की मार से बेहोश होकर गिरीं। फिर उन्हें खबर मिली कि उनके पति गोली के शिकार हो गए हैं। पर वह थाने पर झंडा लग जाने के बाद ही लौटीं। इस तरह बाबा, माँ, पति—उनके तीनो स्नेह-धन स्वतंत्रता की बलि चढ़ गए। पिता पहले ही बलिदान दे चुके थे। तारा रानी को भी दोबारा जेल भेज दिया गया। गिरफ्तारी के समय वह घायल थीं। छपरा, भागलपुर जेल में से स्वराज्य की घोषणा के बाद ही वह रिहा हुईं।

उनके पति फुलेना प्रसाद चंद्रशेखर आजाद की तरह संयमी, व्रती और कसरती पहलवान थे। पहले उनका लाठी से हाथ टूटा, फिर उन्हें भाला लगा। तब भी वह लड़ते रहे थे। एक के बाद एक गोली उनपर दागी गई। आठवीं गोली में जाकर उनकी मृत्यु हुई थी। उनकी शहादत की कहानी १९४२ के विद्रोहात्मक आंदोलन के इतिहास में अमर है। तारा रानी लिखती हैं—'मैंने अपने पति को मृत नहीं माना। उनकी निरंतर उपस्थिति अनुभव करती रही और उनकी याद लिये सेवा का व्रत निभाती रही। दूसरी बार जेल में एक वर्ष तक मुझे एकांत कोठरी में रखकर तनहाई की यातना दी गई; पति की याद व प्रेरणा के सहारे ही सब झेल गई।'

आजादी के बाद तारा रानी श्रीवास्तव समाजवादी पार्टी में अठारह वर्ष तक काम करती रहीं। १९६२ में उन्हें उच्च रक्तचाप की शिकायत रही, फिर भी १९६७ तक सभाओं में जाती रहीं। उसके बाद अशक्त होकर घर बैठ गईं। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से उनका पता लेकर मैंने उनसे पत्र-व्यवहार किया तो उनका उत्तर पाकर दंग रह गई। पूरा पत्र मार्मिकता से ओत-प्रोत। 'तीन सौ पृष्ठों की पुस्तक लिखकर रखी हुई है। पैसों के अभाव में टाइप तक न करा पाई। मुझ गरीब को तो डाक खर्च भी भार लगता है। किसी शहर में कोई ऐसा घर नहीं है, जो मुझे बुलाकर रखे और मेरा यह काम करवा दे। मेरे जैसा व्यक्ति तो वह है, जो युद्ध जीतकर भी हार गया—रणक्षेत्र का घायल सिपाही। कौन देखे? किसे फुरसत?…समय आएगा, जब माताएँ बच्चों को फुलेना प्रसाद का नाम लेकर बहादुरी का पाठ पढ़ाएँगी। अभी तो…' यह पत्र लिखते समय उनकी आयु बासठ वर्ष थी। पढ़कर मन भर आया था। अब वह नहीं रहीं, दुःखों से भी आजाद हो गई हैं।

दादा बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी लिखा था—'तारा रानी श्रीवास्तव बिना शिक्षा भी सुशिक्षिता हैं—दुःख की विश्व व्यापी यूनिवर्सिटी की एम.ए., डी.लिट.। इस क्षीणकाल बालिका वधू ने भयंकर प्रलय देखी थी; पर हमेशा उसपर गर्व ही करती रही, कभी विचलित नहीं हुई।'

☐

पटना सचिवालय पर गोली के शिकार

जगपति कुमार

१९४२ के आंदोलन में बिहार की राजधानी पटना पर सबकी नजर लगी थी। आंदोलन का बिगुल बजते ही आसपास के गाँवों के लाखों लोग पटना पहुँच गए। डॉ. राजेंद्र प्रसाद की गिरफ्तारी ने उनमें रोष भर दिया था। बिहार नेशनल कॉलेज के छात्र पढ़ाई छोड़कर बाहर आ गए। पटना विश्वविद्यालय के प्रांगण मे छात्रों की एक बड़ी सभा हुई, जो विशाल जुलूस में परिवर्तित हो, सरकार विरोधी नारे लगाती, बाँकीपुर जेल होती हुई राजभवन पहुँच गई। ११ अगस्त को प्रदर्शनकारियो ने पटना मेडिकल कॉलेज भवन पर तिरंगा फहरा दिया। उसी दिन पटना सिटी कचहरी पर भी तिरंगा फहराया गया।

अंग्रेजों ने पटना शहर में गोरखा सैनिक तैनात कर दिए थे, क्योंकि उन्हे हिदुस्तानी सिपाहियों पर भरोसा कम था। गोरखा सिपाहियों ने कोशिश की कि जुलूस सचिवालय की ओर न बढ़ पाए। लेकिन लाखों की संख्या में लोग सचिवालय की ओर बढ़ने लगे। चारों तरफ भीड़-ही-भीड़ थी और भीड़ में था जोश। आगे बढनेवाले लोग गिरफ्तार कर लिये जाते; लेकिन इससे भीड़ में जरा भी कमी नही आई। दिन के बारह बजे से भीड़ उमड़नी शुरू हुई और दो बजकर पंद्रह मिनट तक सचिवालय के पूर्वी फाटक पर युवक तिरंगा फहराने में सफल हो गए।

गोरखा फौज के जवानों ने तुरंत वह झंडा उतार दिया; लेकिन भीड़ का दबाव बढ़ता ही गया। लगभग ढाई घंटे तक सचिवालय परिसर में घुसने के लिए सघर्ष चला। इसके बाद युवकों की एक टोली फौज के घेरे को तोड़कर ललकारते हुए भीतर घुस गई। तब गोली-चालन का हुक्म हुआ। फौज के जवानों ने तेरह चादह राउंड गोलियाँ चलाईं। उमाकांत सिंह नाम का युवक हाथ में झंडा लिये सबसे आगे था। इसलिए उसे ही पहली गोली लगी और वह धराशायी हो गया।

उमाकात के गिरते ही किशोर उम्र के जगपति कुमार झंडा हाथ में लिये जुलूस का नेतृत्व करने लगा। उसे और उसके साथियों को प्रवेश करने से रोका गया। लेकिन स्वतंत्रता के दीवाने भला क्या परवाह करते! वे डटे रहे। मजिस्ट्रेट डब्ल्यू.जी. आर्चर विधानसभा फाटक के सामने गोरखा फौज की टुकड़ी के साथ तैनात था। उसने पुलिस के घेरे में प्रदर्शनकारियों को यह सोचकर आगे बढ़ने दिया कि जब वे एकदम तंग घेरे में आ जाएँगे तब न आगे भाग सकेंगे, न पीछे लौट सकेंगे।

जगपति कुमार सबसे आगे था और अपने प्राणों की परवाह किए बिना बढ़ता ही गया। 'वंदेमातरम्' के नारों से आकाश गूँज उठा। झंडा लेकर आगे बढ़ते हुए एक के बाद एक ग्यारह साथी गोली खाकर गिरते गए। इस तरह इनमें से सात नौजवान शहीद हो गए। इनमें जगपति सबसे कम उम्र का था। उमाकांत सिंह पटना राममोहन राय सेमिनरी के ग्यारहवीं कक्षा का छात्र था, पर उसकी उम्र ज्यादा थी। वह विवाहित भी था; जबकि जगपति कुमार मात्र सत्रह वर्ष का ही था, जब उसने शहादत पाई।

इन सातों शहीदों की याद में उस सड़क का नाम १९४२ क्रांति मार्ग' रखा गया है। हर साल वहाँ शहीदों को पुष्पांजलि अर्पित की जाती है।

□

झगरू और बच्चन प्रसाद

बिहार के सिवान जिले के भैरवा प्रखंड में 'तितरा' ग्राम है। उसीमें सट मिश्रौलिया में झगरू का घर था। पिता का नाम था समोध साह। गरीब झगरू साह ने गाँव के लोअर प्राइमरी स्कूल तक की पढ़ाई की थी। गरीबी के कारण वह आगे नहीं पढ़ सका। झगरू साह के परिवार की रोजी रोटी इक्का हाँकने से चलती थी। बचपन से ही झगरू इस काम में अपने पिता की मदद करता था। घोड़े को चारा डालना, उसकी मालिश करना, सफाई करना और इक्का चलाना। पिता की उम्र बढ़ी तो झगरू खुद ही इक्का लेकर भैरवा से सिवान और गाँव से भैरवा जाता था। ज्यादातर वह सिवान कचहरी ही जाया करता था।

इक्का चलाते हुए भी झगरू की दिलचस्पी कई बातों में रहती थी। वह नियमित अखबार पढ़ता। कचहरी में लोगों की बातें सुनता। इक्के पर बैठे सवारियों के मुँह से अंग्रेजों के जुल्म की कहानी भी सुनता। नेताओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त करता। गांधीजी और राजेंद्र बाबू में उसकी खास दिलचस्पी थी। जब भी कोई कांग्रेसी नेता आते, वह उनका भाषण सुनने जरूर जाता। भाषण सुनते सुनते उसके मन में भी देश के लिए कुछ करने की तमन्ना जाग उठी।

९ अगस्त, १९४२ को 'भारत छोड़ो आंदोलन' छिड़ा तो वह भी अपने आप को रोक नहीं सका। उस समय उसकी उम्र मात्र उन्नीस साल की थी। ११ अगस्त को पटना सचिवालय पर झंडा फहराते सात किशोर शहीद हुए थे। इसकी खबर सारे राज्य में फैल चुकी थी। सिवान राजेंद्र बाबू के घर का इलाका था। इसलिए वहाँ क्रांति की लहर जोर पकड़ गई। १२ अगस्त को सिवान में फौजदारी और दीवानी कचहरियों से अंग्रेजी राज का झंडा (यूनियन जैक) उतारकर उसकी जगह तिरंगा फहरा दिया गया। झंडा फहराने में झगरू साह और बच्चन प्रसाद आगे रहे।

१३ अगस्त को मालूम हुआ कि कचहरी पर से तिरंगा उतार दिया गया है। यह समाचार सुनकर छात्र वहाँ फिर से एकत्र होने लगे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि तिरंगा फिर फहराया जाएगा। इसी उद्देश्य से वे कचहरी पहुँचे। उस समय अनुमंडल अधिकारी शरणचंद्र मुखर्जी थे। छात्रों ने माँग की कि हमारा झंडा वापस करो। भीड की उग्रता देखकर झंडा वापस कर दिया गया। अनुमंडल अधिकारी हिंदुस्तानी थे, इसलिए भीड़ ने उन्हें अपना नेता कहकर अपने साथ ले लिया। आगे-आगे एस.डी.ओ शरणचंद्र मुखर्जी, पीछे-पीछे जुलूस। भीड़ कचहरी पहुँचकर दीवानी क़चहरी के मैदान में आ गई। वहाँ तुरंत झंडा फहरा दिया गया और झंडा गान गाया गया। इसी बीच सशस्त्र पुलिस वहाँ आ पहुँची, जिसे देख आम जनता तितर-बितर हो गई। लेकिन झगरू और बच्चन प्रसाद सहित अनेक विद्यार्थी वहीं डटे रहे।

पुलिस अधिकारी ने लाठी चार्ज का हुक्म दिया। सात विद्यार्थी नेता गिरफ्तार हुए, अनेक जख्मी हुए। इस लाठी चार्ज के विरोध में फिर जुबली सराय में सभा हुई। जुबली सराय सिवान का एक बहुत बड़ा पुराना मकान है। उसके प्रांगण में सभा के आयोजन की खबर प्रशासन को मिली तो सशस्त्र पुलिस वहाँ भी आ पहुँची। यहाँ एम.सी. मिश्र दंडाधिकारी थे। उन्होंने सराय खाली करने का हुक्म दिया। लेकिन सभा करनेवाले लोग कहाँ मानने वाले थे! इसपर पुन: लाठी चार्ज का हुक्म हुआ। अंधाधुंध लाठियाँ चलीं। डॉ. सरयूप्रसाद गुप्त को बहुत चोटें आईं। उनके नाम वारंट जारी किया गया; लेकिन वह भूमिगत हो गए। इसपर भीड़ बेकाबू हो गई और पुलिस खतरे में पड़ गई। भीड़ के पथराव से पुलिस दल के अनेक सदस्य घायल हो गए। तब गोली चलाने का आदेश दिया गया। इस गोलीवर्षा में झगरू साह और बच्चन प्रसाद गोली के शिकार हुए।

बच्चन प्रसाद 'ठेपहरा' गाँव का था। बच्चन प्रसाद की उम्र उस समय मात्र बारह वर्ष की थी। वह दयानंद एंग्लो वरनाकुलर मिडिल स्कूल में सातवीं कक्षा का छात्र था। गोली से घायल होने के बाद उसे सिवान हस्पताल में भरती किया गया, जहाँ दो दिन तक मौत से संघर्ष करता हुआ १६ अगस्त को वह शहीद हो गया। उसकी स्मृति में ठेपहरा गाँव में श्री हरिहर आजाद ने एक पुस्तकालय की स्थापना की है।

इसी जुबली सराय के गोलीकांड में झगरू साह भी शहीद हुआ। इनके साथ एक अन्य छात्र छठगिरी भी गोली का शिकार हुआ; लेकिन वह बच गया। गरीब इक्केवान झगरू साह की कुरबानी देश के किसी बड़े नेता से कम नहीं थी। उसकी अंत्येष्टि बी.एस.ई. स्कूल के निकट दाहर नदी के किनारे की गई। हजारों लोगों ने

झगरू साह का भस्म अपने ललाट पर लगाकर इस शहीद का गौरव बढ़ाया और क्रांति की लौ जगाए रखने की कसम खाई

बच्चन प्रसाद को चौदह वर्ष की उम्र में चक्रव्यूह भेदन करनेवाले अभिमन्यु के समान दर्जा दिया गया। अभिमन्यु की उम्र उस समय चौदह वर्ष की थी; जबकि बच्चन प्रसाद ने बारह वर्ष की नन्ही आयु में ही कचहरी पर दो बार तिरंगा फहराने का चमत्कार कर दिखाया था। उसकी शहादत को भी इसीलिए सम्मान के साथ याद किया जाता है।

□

झंडा फहराकर ऊपर से कूद पड़ा

शंभुनाथ

९ अगस्त को क्रांति का बिगुल बजा और उसी दिन एक विशाल जुलूस बिहार के छपरा जिला कचहरी पर जा पहुँचा। छपरा में एक ही कॉलेज था—राजेंद्र कॉलेज। उसके छात्रों ने पढ़ाई छोड़ दी और क्रांति को नेतृत्व प्रदान करने लगे। स्कूल के लड़के उनके पीछे थे।

साहबगंज बाजार और म्यूनिसिपल चौक, सब जगह भीड़ इकट्ठी हो गई। सब-डिवीजन कोर्ट के पश्चिम में, चर्च की चारदीवारी के पास एक अंग्रेज सारजेंट के नेतृत्व में सशस्त्र पुलिस खड़ी थी। दिन के ग्यारह बजे का समय था। कलेक्टर के.पी. सिन्हा काला चश्मा, टोप पहने, गंभीर मुद्रा में खड़े थे कि उनके सामने ही युवकों का जुलूस कलेक्टरी में प्रवेश कर गया। शंभुनाथ नाम का एक छात्र दनदनाता हुआ लोहे की सीढ़ियाँ चढ़ता छत पर पहुँच गया और तुरत-फुरत में झंडा फहराकर वापस लौट आया। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच झंडा गान भी गाया गया। कचहरी में काम बंद हो गया। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कार्यालय और म्युनिसिपलिटी कार्यालय पर भी तिरंगे फहरा दिए गए। पुलिस की टुकड़ी कभी फौजदारी तो कभी दीवानी कचहरी में ही चक्कर लगाती रह गई। खजाने के पास कड़ा पहरा लगा दिया गया।

दूसरे दिन शंभु ने फिर तिरंगा फहराया और ऊपर से कूद पड़ा। नीचे खड़ी भीड़ ने उसे हाथोंहाथ सँभाल लिया। कुछ सिपाही वहाँ पहुँचे। उसे देख छात्रों ने नारा लगाया—''सिपाही हमारा भाई है।'' सिपाही ने भी उत्तर दिया, ''हाँ, हम आपके भाई हैं। लेकिन हमारी भी ड्यूटी है। आप तोड़-फोड़ न करें, शांत रहें।'' लोग शांत खड़े हो गए। सिपाही दौड़कर गया और उसने उच्चाधिकारियों को भीड़ के एकत्र होने की सूचना दी। तुरंत लाठीधारी पुलिस की एक टुकड़ी वहाँ आ गई।

भीड को तितर बितर करने के लिए लाठी चार्ज किया गया लेकिन भीड की संख्या के आगे पुलिस की संख्या नगण्य थी इसलिए पुलिस की कुछ न चली भीड़ ने कचहरी, स्टेशन, सब जगह तोड़-फोड़ करके आग लगा दी।

सारण जिले में क्रांति की लहर बहुत तेजी से फैली। सिवान, महाराजगंज, सोनपुर आदि स्थानों पर अंग्रेजी राज प्राय: ठप्प हो गया। अंतत: तोपों से लैस फौज की एक टुकड़ी छपरा पहुँच गई। छपरा स्टेशन पर भी फौज ने डेरा डाल दिया। सारे जिले में 'मार्शल लॉ' लग गया। ऐलान कर दिया गया कि जो भी रेल की पटरी उखाड़ता, तार काटता, सड़क मार्ग या सरकारी विभागों के कार्यों में बाधा डालता देखा जाएगा, उसे देखते ही गोली मार दी जाएगी। लोगों को अपने साथ पहचान पत्र और अनुमति पत्र रखना पड़ता था। इसलिए बाद में छात्रों की गतिविधियों पर रोक लग गई। इसके पूर्व वे छपरा जिले में व्यापक तोड़-फोड़ कर ही चुके थे। पंद्रह वर्षीय शंभुनाथ तो दोनों दिन अपना कमाल दिखा ही चुका था।

□

त्रिलोकसिंह पांगती

पिथौरागढ़ के अंतर्गत 'दरकोट मल्लाजौहर' ग्राम के त्रिलोकसिंह ने मिडिल परीक्षा पास करने के बाद ही स्वाधीनता के लिए काम करना शुरू कर दिया था। पहले उसने ग्रामीण अंचलों में जन-जागरण के लिए ग्राम संगठक के रूप में काम शुरू किया।

कुछ दिन बाद वह चुनौदा के गांधी आश्रम में कार्यकर्ता नियुक्त हुए। १९४२ की जनक्रांति के दौरान त्रिलोकसिंह ने गांधी आश्रम पर समारोहपूर्वक तिरंगा झंडा फहराया। आश्रमवासियों और ग्रामीण जनों ने 'भारत माता की जय' बोलकर सारा वातावरण गुँजा दिया। चुनौदा आश्रम के आसपास गोरे फौजियों की कई टुकड़ियाँ पड़ी हुई थीं। वे लोग इस जयघोष को बरदाश्त नहीं कर सके। फौजियों की एक टुकड़ी गांधी आश्रम जा पहुँची; लेकिन तब तक गाँव के लोग झंडा फहराकर वहाँ से जा चुके थे। कुछ आश्रमवासियों के साथ त्रिलोकसिंह वहाँ उपस्थित थे।

फौजी टुकड़ी के कमांडर ने पूछा, "यह झंडा किसने फहराया है?"

"मैंने।" त्रिलोकसिंह का निर्भीक उत्तर था।

"यह झंडा नीचे उतारो।" फौजी ने आदेश दिया।

"नहीं, मैं इसे नीचे नहीं उतारूँगा।" त्रिलोकसिंह ने साफ जवाब दिया।

नकारात्मक जवाब सुनकर कमांडर गुस्से से लाल हो उठा और वह अपने गोरे सिपाहियों के साथ त्रिलोकसिंह पर टूट पड़ा। त्रिलोकसिंह पर सैनिक तब तक डंडे बरसाते रहे जब तक कि वह बेहोश होकर गिर नहीं गए। बेहोशी की हालत में ही उन्हें गिरफ्तार कर थाने भेजा गया।

त्रिलोकसिंह को गंभीर चोटें आई थीं। हालत बिगड़ती देख उन्हें अल्मोड़ा

के नागरिक अस्पताल मे भरती किया गया पर उनकी हालत मे को हुआ गभीर प्रहारों के कारण उनकी दशा बिगडती गई और २६ दिसंबर, १९४२ को देशभक्त त्रिलोकसिंह पांगती की आँखें सदा गई। स्वाधीनता की बलिवेदी पर एक और शहादत अंकित हो गई।

देवरिया का शहीद किशोर

रामचंद्र

देवरिया ग्रामीण अंचल 'घूसी' के स्कूल का एक चौदह वर्षीय विद्यार्थी रामचंद्र अपने छह साथियों के साथ देवरिया पहुँचा। 'भारत छोड़ो आंदोलन' की आसपास की खबरों से किशोर रामचंद्र इतना उत्तेजित हुआ कि राष्ट्र पर मर मिटने की धुन उसपर सवार हो गई।

गाँव से देवरिया जाते हुए रास्ते में खेतों में फावड़े चला रहे किसानों से रामचंद्र ने कहा, "फावड़े से मेरा गला काटकर देवरिया ले जाएँ और लोगों से कहे कि वे इस तरह देश के लिए मरें।" किसान रामचंद्र को हैरानी से देखते रह गए कि लड़का कहीं पागल तो नहीं हो गया।

रास्ते में चारों ओर पुलिस थी। रामचंद्र और उसके छह साथी पुलिस से बचते हुए देवरिया की कचहरी तक आ गए। यहाँ चारों ओर पुलिस-ही-पुलिस थी। सख्त पहरा था। कलेक्टर के कार्यालय के ऊपर ब्रिटिश 'यूनियन जैक' फहरा था। रामचंद्र की आँखों में पराधीनता का सूचक यह विदेशी झंडा चुभने लगा। उसने उसे उतारने का निश्चय किया।

पुलिस की निगाहों से बचता हुआ वह न्यायालय के पीछे जा पहुँचा और अपने साथियों की पीठ का सहारा लेते हुए छत पर पहुँचने में सफल हो गया। फिर क्या था! एक ही झटके में उसने 'यूनियन जैक' उतार दिया और अपने कुरते की जेब में छिपाया तिरंगा निकालकर वहाँ फहरा दिया। उसके बाद भी वह चुपचाप नीचे नहीं उतर आया। अपने साथियों के साथ विजयोल्लास में बोल उठा—"इनकलाब जिंदाबाद!" आवाज नीचे पहुँची। पुलिस चौंकी। पर तब तक रामचंद्र अपने साथियों के साथ नीचे उतरा और पुलिस की आँखों में धूल झोंकते हुए भाग निकला।

वापसी पर इन सातों किशोरों ने देखा रामलीला मैदान में कोई जलसा चल रहा है ये लोग वहां पहुँचकर जलसे में शामिल हो गए तभी लाठी गोली की वर्षा शुरू हो गई। लोग तितर-बितर होकर भागने लगे। पुलिस ने भागनेवालों पर भी लाठियाँ चलाई और गोलियाँ बरसाई। देखकर रामचंद्र को बुरा लगा। उसने पुलिसवालों को ललकारकर कहा, "इन भागनेवालों को क्यों मारते हो? मारना है तो मुझे मारो।" कम उम्र के किशोर की यह बात सुनकर मजिस्ट्रेट स्तब्ध रह गया। उसने रामचंद्र से पूछा, "मरना चाहता है?"

"हाँ, यहाँ मारो।" रामचंद्र ने वीरतापूर्वक आगे बढ़कर अपनी छाती खोल दी। मजिस्ट्रेट ने उसके साहस की दाद देने के बजाय पिस्तौल निकालकर उसपर गोली दाग दी। रामचंद्र वहीं गिर पड़ा। पुलिस ने उसके हाथ से झंडा छीनने की कोशिश की; लेकिन उसके हाथों की पकड़ इतनी मजबूत थी कि पुलिस असफल रही।

रामचंद्र गंभीर रूप से जख्मी हुआ था। उसके साथी उसे उठाकर अस्पताल ले गए; पर वह बच नहीं पाया। नन्ही सी उम्र होने के बावजूद रामचंद्र ने दिखा दिया कि राष्ट्र के लिए किस तरह निर्भीक होकर जान दी जाती है।

□

अदालत में घुसकर जज को इस्तीफा देने के लिए ललकारनेवाली

हेमलता और गुणवती

१९४२ आंदोलन में दक्षिण भारत के छात्र-छात्राएँ भी पीछे नहीं थे, बल्कि कहीं-कहीं तो उन्होंने आगे बढ़कर अद्‌भुत कारनामे—पुलिसवालों की टोपियाँ उतरवाकर उन्हें जबरन गांधी टोपियाँ पहनाना, स्टेशन मास्टरों की छुट्टी कर उनसे कागज-पत्र छीनकर स्टेशनों पर कब्जा कर लेना, गाड़ियों का आवागमन रोक देना आदि कर दिखाए थे। धारवाड़ की दो स्कूली छात्राओं—हेमलता और गुणवती ने भी अदालत में घुसकर २३ अक्तूबर, १९४२ को ऐसा ही एक अन्य साहसी कारनामा कर दिखाया था।

दोनों छात्राएँ जिला अदालत में घुस गईं। एक ने उपस्थित लोगों को संबोधित करना शुरू किया, दूसरी जज की सीट पर ही तिरंगा झंडा फहराने लगी। उन्होंने जज को इस्तीफा देने या इसका परिणाम भुगतने की चेतावनी दी। लोगों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, ''हम जज साहब को आठ दिन की मोहलत देती हैं। वे इस्तीफा देकर बाहर आ जाएँ और देशभक्तों का साथ दें, वरना आप सब उन्हें सबक सिखाइए। नहीं तो इन्हें सबक सिखानेवाले स्वतंत्रता सेनानियों का साथ दीजिए।'' जाहिर है, उनकी इस धमकी भरी कार्यवाही के उत्तर में उन्हें पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया जाता।

पुलिस के भीतर प्रवेश करते ही गुणवती तो भागने में सफल हो गई, पर हेमलता पकड़ में आ गई। कम उम्र के कारण उसे एक महीने की जेल की सजा या पचास रुपए जुर्माने का हुक्म दिया गया। हेमवती ने जुर्माना भरने के बजाय जेल जाना ही पसंद किया, जैसाकि उन दिनों होता था।

कुछ दिन बाद गुणवती ने फिर उसी अदालत में प्रवेश कर उसी कृत्य को दुहराना शुरू किया। दुबारा कार्यवाही पर उसे हेमवती से दुगुनी सजा सुनाई गई—

सौ रुपए जुर्माना या तीन महीने की कड़ी कैद शायद हेमवती के अकेले जेल जाने से गुणवती को उससे ईर्ष्या हुई थी और अपने भाग आने पर आत्मग्लानि इसलिए उसने खुशी खुशी जुर्माने के बजाय तीन महीने के लिए जेल जाना पसंद किया इस बार सजा कड़ी कैद की थी, फिर भी इन्हें अन्य जगहों पर पकड़े गए अपने साथी लड़कों से कम सजा दिए जाने पर शिकायत की—इस मामले में भी लड़के-लड़की के बीच भेदभाव!

□

थानेदार को सबक सिखानेवाले

कामताप्रसाद विद्यार्थी और साथी

९ अगस्त को 'भारत छोड़ो आंदोलन' छिड़ते ही धानापुर ग्राम के जो छात्र यू.पी. कॉलेज, बनारस में पढ़ते थे, अपनी पढ़ाई और छात्रवृत्तियाँ छोड़कर वापस आ गए। आसपास के गाँवों के युवकों को इकट्ठा करके उन्होंने धानापुर छावनी में आंदोलन करने और थाने पर झंडा फहराने का निर्णय लिया। दो-तीन तरफ से छात्रों की टोलियाँ समवेत स्वर में गाते हुए—'यह न पूछो कि मरकर किधर जाएँगे', थाने की ओर चलीं।

सबसे पहले कामताप्रसाद विद्यार्थी के नेतृत्व में युवकों का एक जत्था थाने की ओर बढ़ा। थाने में पहले ही सूचना पहुँच गई थी। थानेदार सतर्क हो गया था और उसने अपने सिपाहियों को भी आगाह कर दिया था। तभी कामताप्रसाद का जत्था थाने के फाटक पर आ गया। उन्होंने थानेदार से अनुरोध किया कि उन्हें शांतिपूर्वक ढंग से थाने पर तिरंगा फहराने दिया जाए। थानेदार क्रोध से भड़क उठा। बहस से कोई बात बनते न देख कामताप्रसाद विद्यार्थी ने अपने सहयोगियों के साथ एक-एक करके दीवार फाँदकर झंडा फहराने की मंशा जाहिर की और वे दीवार फाँदने लगे।

स्थिति को हाथ से निकलते देख थानेदार ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। पहला निशाना कामताप्रसाद विद्यार्थी को ही बनाया गया। पर तुरंत लपककर उनके मित्र बाबू रघुनाथसिंह ने आगे बढ़ गोली अपने सीने पर झेल ली और अपने प्राणों की आहुति देकर अपने नेता की जान बचा ली। दूसरी-तीसरी गोली से हीरासिंह और किशोर महँगूसिंह शहीद हुए। गोलीबारी में कई लोग घायल हुए।

इस हृदयविदारक घटना से दूसरे दल का नेतृत्व करते वहाँ पहुँचे बाबू राजनारायणसिंह थानेदार पर बिफर पड़े—"यहाँ छात्रों पर गोलियाँ चलवाकर तुम्हें

क्या मिल गया? वह सीना ताने उसके आगे खडे हो गए लो चलाओ और गोली तब तक भीड ने थानेदार को कसकर पकड लिया पास खडे नरसिह दास ने लाठी से थानेदार के सिर पर एक भरपूर वार किया। थानेदार पूरी शक्ति से छूटने के लिए हाथ-पैर पटकता रहा; पर छात्र उसे सबक सिखाने पर तुल गए थे। उसपर तब तक लाठियाँ पड़ती रहीं, जब तक उसका प्राणांत नहीं हो गया। थानेदार की पिस्तौल क्रांतिकारियों ने छीन ली और थाने के छोटे-बड़े सब मुंशी और सिपाही मौत के घाट उतार दिए गए। थाने पर तिरंगा लहरा उठा। इस घटना का बदला बाद में अंग्रेजों ने थानापुर के निर्दोष गाँववासियों पर जुल्म ढाकर लिया।

□

जेल से परीक्षा देनेवाला

दीपनारायण सिंह

फतेहपुर जनपद के 'लदिगवाँ' गाँव का दीपनारायण सिंह बचपन से ही देशभक्ति की भावना से भर उठा था। हाई स्कूल तक आते-आते देश की स्वाधीनता के लिए काम करने लगा था। इसके बाद आगरा कॉलेज में पढ़ते हुए दीपनारायण सिंह ने क्रांतिकारी छात्र नेता के रूप में कॉलेज में हड़ताल करा दी थी। यह १९४१ की बात है।

हड़ताल समाप्ति के बाद जहाँ छात्रों के बीच उनकी संगठन शक्ति और ओजस्वी प्रतिभा का लोहा माना गया, वहीं दूसरी ओर वह अंग्रेजी शासन की आँखों में खटकने लगे। उन दिनों अंग्रेज गवर्नर हैलेट आगरा आया था। विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जे.सी. चटर्जी ने उसे अपने साथ चाय के लिए बुलाया। छात्र नेता दीपनारायण सिंह की संगठन क्षमता और भाषणपटुता से श्री चटर्जी ने हैलेट को सराहनीय ढंग से अवगत कराया। हैलेट ने उनसे कहा, ''यदि वह उन्हें सहयोग दें तो उन्हें कोई भी उच्च पद दिया जा सकता है।''

यह बहुत बड़ा प्रलोभन था, जो दीपनारायण को अपने पथ से विचलित कर सकता था। पर दीपनारायण ने बिना रुके, बिना सोचे उसी क्षण उन्हें निर्भीक उत्तर दिया, ''मिस्टर हैलेट, मैं अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के लिए पैदा हुआ हूँ। क्षमा करें, आपकी सहायता नहीं कर सकता।'' सुनकर गवर्नर एक क्षण तो अवाक् रह गया, फिर हँसते हुए कुलपति चटर्जी से बोला, ''देखिए मिस्टर चटर्जी, यह कैसी मूर्खता भरी बातें कर रहा है, जैसे इसके कहने भर से हम बोरिया-बिस्तर बाँधकर इस देश से चले जाएँगे।'' बात वहीं खत्म हो गई।

अंग्रेज दीपनारायण को सजा देने की ताक में ही थे कि १९४२ का आंदोलन छिड़ गया और आंदोलनकर्ता दीपनारायण सिंह पकड़कर जेल में डाल दिए गए।

उन्हें आगरा सेंटल जल मे रखा गया दीपनारायण जेल मे भी सक्रिय रहे जेल म उनका अध्ययन जारी रहा वह हिंदी में एम ए कर रहे थे तथा एल एल बी की परीक्षा म भी बैठना चाहते थे। उन्होने जल के उच्चाधिकारी को प्रार्थना पत्र भेजा कि उन्हें परीक्षा में बैठने की सुविधा दी जाए; लेकिन अंग्रेज सरकार ने उस क्रातिकारी छात्र नेता की प्रार्थना खारिज कर दी। दीपनारायण सिंह इस इनकारी से क्षुब्ध अवश्य हुए, पर निराश नहीं। उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट तक अपील की। इस बीच हिंदी एम.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा होने लगी थी।

जिस दिन आगरा कॉलेज में 'लॉ' की परीक्षा शुरू होने वाली थी, उसी दिन सुबह-सुबह जेल के वार्डर ने उन्हें सूचना दी कि जेल फाटक पर छह-सात पुलिसवाले उन्हें ले जाने के लिए आए हैं। मजिस्ट्रेट ने उन्हें परीक्षा दिलवाने के लिए आदेश जारी कर दिए। दीपनारायण को ऐसी आशा नहीं थी। अत: परीक्षा की पूरी तैयारी भी उन्होंने नहीं की थी कि अचानक यह घटना घटी। दीपनारायण सिंह के पैरों में बेड़ी पहनाई गई तथा बाएँ हाथ में हथकड़ी डाल दी गई। इसी हाल मे उन्हे परीक्षा दिलवाने के लिए जेल से बाहर ले जाया गया।

फिर भी दीपनारायण ने परीक्षा दी। जैसे ही वह परीक्षाभवन से परीक्षा देकर बाहर निकले, सैकड़ों छात्रों ने उन्हें घेर लिया। उनका हालचाल पूछा और मिठाइयाँ बाँटी गईं, जिसे पुलिसवालों के साथ मिलकर खाया गया। इसी तरह दीपनारायण हथकड़ी-बेड़ी डालकर परीक्षा देते रहे और उनके संगी-साथी उन्हे मिठाई खिलाते रहे।

दीपनारायण सिंह ने बाद में एम.ए. भी किया, 'साहित्य रत्न' की उपाधि भी पाई और 'लॉ' की डिग्री भी प्राप्त की। जेल में रहते उन्होंने अनेक भावपूर्ण राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखीं, जिन्होंने स्वाधीनता संग्राम को बल प्रदान किया।

इस जुझारू और संवेदनशील छात्र नेता दीपनारायण सिंह को साहस और सघर्ष के लिए पूरे क्षेत्र में आज भी आदर के साथ याद किया जाता है।

□

रानी

मात्र ग्यारह वर्ष की लड़की रानी। किंतु राष्ट्रीय आंदोलन में संलग्न परिवार की पुत्री होने के कारण तत्कालीन परिस्थिति से पूर्व परिचित थी। उसके घर में कार्यकर्ता एकत्र होते, कार्यक्रम बनते, सरकार विरोधी परचे छपते। वह यह सब देखती-जानती थी। कुछ दिन पहले ही उसने किताबों की अलमारी के पीछे परचों का एक बंडल छिपा हुआ देखा था। घर में दूसरी जगह साइक्लोस्टाइल मशीन और स्याही भी देखी थी। इन्हीं परचों में से एक परचे में कार्यकर्ताओं की सूची भी देखी थी।

रानी ने अपने घर के आसपास पुलिस द्वारा धर-पकड़ भी देखी थी। उसके दो भाई तथा पिता जेल में थे। एक भाई भूमिगत थे। एक बड़ा भाई माँ के साथ छोटे बीमार भाई से मिलने मद्रास गए थे, जहाँ उसका ऑपरेशन होने वाला था। घर में केवल ग्यारह वर्षीय रानी, नौकरानी दयावती और एक रसोईदारिन थी। इसलिए उन्हें बड़ी सतर्कता से रहना पड़ता था।

यह घटना १९४२ के आंदोलन के दौरान रायपुर में घटी थी।

एक दिन घर की अन्य महिलाएँ किसी-न-किसी कारण से बाहर गई हुई थीं। उस दिन रसोईदारिन को भी जल्दी जाना था। जाते-जाते वह रानी से कह गई—"बिटिया, बाकी सब बन गया है, दाल में थोड़ी कसर है। वह चूल्हे पर रखी है, दयावती उतार देगी।" रसोईदारिन के जाते ही दरवाजा अच्छी तरह बंद कर लिया गया; क्योंकि शाम तक कोई आने-जानेवाला नहीं था।

रानी घर पर रहकर पढ़ाई कर रही थी। बीच में कुछ सुस्ताने वह बालकनी में चली गई। उसने देखा, घर के सामने की सड़क पर आठ-दस पुलिसवाले खड़े थे। दाएँ-बाएँ भी उतने ही पुलिसवाले तैनात थे। उसे आश्चर्य

हुआ किंतु वह इसका अर्थ नहीं समझी क्योंकि अब घर में ऐसा कोई नहीं था जिसे गिरफ्तार किया जा सके। माँ के मद्रास जाने के बाद से प्रभातफेरियाँ भी बंद थीं

बालकनी से लौटकर वह कुरसी पर बैठी ही थी कि दरवाजे पर दस्तक हुई नौकरानी ने दरवाजा खोले बिना ऊपर से पूछा, ''कौन है?''

''हम पुलिसवाले हैं। घर की तलाशी का हुक्म है।'' दयावती ने अधिकार के साथ कहा, ''मैं दरवाजा नहीं खोलूँगी। घर पर मैं और रानीबाई ही हैं और कोई नहीं है।''

पुलिस दरवाजा तोड़ने का साहस नहीं कर सकी; क्योंकि कुछ साल पहले रानी के पिता को गिरफ्तार कर कोतवाली ले जाया गया था तो रायपुर की जनता कोतवाली पर आक्रमण करने पहुँच गई थी।

एक पुलिसवाले ने कहा, ''अच्छा, हम तुम्हारे किसी रिश्तेदार को बुला लाते हैं, तब तो दरवाजा खोलना ही पड़ेगा। सरकार का हुक्म है।''

रानी के कान में ये शब्द पड़े और वह सतर्क हो गई। जल्दी-जल्दी सोचने लगी, अगर पुलिस के हाथ वह कागजों का बंडल पड़ गया तो अनेक कार्यकर्ता पकड़कर जेल में ठूँस दिए जाएँगे। रानी ने जल्दी-जल्दी साइक्लोस्टाइल मशीन और स्याही पिछले आँगन में जमा गोबर के ढेर में छिपा दी। ऊपर की मंजिल से परचों का बंडल लेकर वह नीचे आने के लिए सीढ़ियाँ उतरने ही वाली थी कि उसे सामनेवाले कमरे में तलाशी लेते पुलिसवाले दिख गए। रिश्तेदार पास ही रहते थे। उन्हें लेकर पुलिसवाले शीघ्र ही आ गए थे और तब दयावती को दरवाजा खोलना पड़ा था।

पुलिस को अंदर देखकर रानी तुरंत वापस छत पर लौट गई। एक कोने में खड़े होकर उसने वे सारे परचे अपने कपड़ों के अंदर ठूँसने आरंभ कर दिए। ऐसा करते उसके हाथ काँप रहे थे; किंतु मन में दृढ़ निश्चय था कि पुलिसवाले उसके पास आएँ, इसके पहले ही उसे निकल जाना है। संयोग से उस दिन वह खद्दर की मोटी साड़ी पहने थी। जल्दी-जल्दी वह सीढ़ियाँ उतरकर उनके सामने से निकल गई। पुलिसवालों ने देखा और सोचा होगा कि एक छोटी सी, मोटी सी लड़की गई है।

रानी शीघ्रतापूर्वक रसोईघर में पहुँच गई और दरवाजा बंद कर उसने जलते चूल्हे में वे परचे डाल दिए। आग को चिमटे से कुरेदती रही, ताकि धुआँ न निकले। तीस कमरोंवाले उस बड़े घर की तलाशी लेकर पुलिसवाले जब रसोईघर तक

चे तब तक रानी चूल्हे की राख तक हटा चुकी थी पुलिसवाले गोबर के ढेर पास भी गए, किंतु बदबू के कारण उसे देखकर दूर से ही लौट गए तलाशी पूरी गई और पुलिसवालों को कुछ भी नहीं मिला।

वह आतंक भरा वातावरण और मात्र ग्यारह साल की लड़की! कैसे कर थी वह सब!

□

अंधाधुंध लाठी चार्ज देखकर धधकी आग

तारकेश्वरी

१९४२ का आंदोलन। पटना के इंटरमीडिएट कॉलेज की प्रथम वर्ष की छात्रा। एक सोलह वर्षीय चंचल व खूबसूरत लड़की। बंबई से मैट्रिक कर नई-नई कॉलेज में आई तारकेश्वरी। राजनीति में आने का कोई इरादा नहीं। घर के अनुशासन मे पली एक घरेलू लड़की। हृदय में भावनाओं का ज्वार, देशभक्ति की उठती तरंगे, पर कुछ करने का तब तक न कोई इरादा, न समझ। किशोर विद्रोह की दबी चिनगारी, पर भड़कने का अवसर नहीं, तो कुंठावश या नादानीवश आंदोलन को एक तमाशे के रूप में ही देखती थी। पर एक दिन इस चिनगारी को सुलगना था, तो सुलग उठी और फिर भड़क भी उठी। आसपास का माहौल उसे रोककर रख ही नहीं सकता था।

एक दिन देखा, पुलिस आंदोलनकारियों पर निर्ममता से लाठी चार्ज कर रही है। जख्मी होकर गिरे लोगों को भी नहीं बख्श रही है—स्त्रियों, बच्चों को भी नहीं। दखल देनेवाले छात्रों को उसने और भी बेरहमी से पीटा और लहूलुहान कर दिया। यह देखकर तारकेश्वरी व उसके कुछ अन्य साथी विद्यार्थियों का खून खौल उठा। बस दूसरे दिन उन सब साथियों ने कॉलेज छोड़ दिया और आंदोलन में कूद पड़े।

तारकेश्वरी को शेरो-शायरी का शौक था। इस खूबसूरत अल्हड़ किशोरी की शायरी सुनकर न जाने कितने लड़के उसपर जान न्योछावर करने को तैयार दिखते थे। पर आजादी की जंग लड़ने के जोश में वे सबकुछ भूल गए और तारकेश्वरी के एक इशारे पर देश के लिए न केवल आंदोलन में भाग लेने के लिए, बल्कि देश की खातिर मरने-कटने तक को तैयार हो गए। ये लोग मिलकर नारे लगाते, धरने देते, हर गतिविधि में आगे बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते। पर प्रथम वर्ष के छात्र-छात्राओं की उम्र देखते हुए बस उसे जोश व उमंग का नाम दिया जाता। कोई

उन्हें गभीरता से न लेता। फिर भी कुछ दिन बाद वे पकड़ लिये गए।

कम उम्र के इन लड़के-लड़कियों को एक अलग कैंप जेल में रखा गया। बड़ी जेलों में तब जगह कहाँ थी! और आंदोलनकारियों की तादाद रोज-रोज बढ़ रही थी। कैंप जेल को भी इन लोगों ने मौज-मजे व शरारतों की जगह बना लिया। वहीं जेल में प्रभातफेरी निकालते, गोष्ठियाँ करते, देशभक्ति के गीत गाते; जब कोई आता दीखता तो कीर्तन करने लगते। अखबार न मिलने, भोजन खराब मिलने पर खूब हंगामा करते। इसपर सजा और भी कड़ी कर दी जाती। पर उन दिनों सजा की कौन परवाह करता था और वह भी इस उम्र में! मुकदमा नहीं चलाया गया और नौ महीने बाद सबको छोड़ दिया गया।

इस टोली की नेत्री या नायिका तारकेश्वरी को जेल से छूटते ही माता-पिता ने तुरंत दूसरी जेल में डाल दिया यानी सत्रहवें वर्ष में ही उसकी शादी कर दी गई, ताकि वह फिर ऐसे काम न कर सके। पर इसी तारकेश्वरी ने बाद में तारकेश्वरी सिन्हा बन फिर राजनीति में भी अपनी शेरो-शायरी चलाई और केंद्रीय सरकार की मंत्री के रूप में भी अपना जादू चलाया। प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के मंत्रिमंडल में वह सबसे कम उम्र की मंत्री थीं।

□

आजाद हिंद फौज की सैनिक

भारती सहाय

भारती सहाय

भारतीय क्रांतिकारी श्री आनंदमोहन सहाय और उनकी पत्नी श्रीमती सती सहाय को ब्रिटिश सरकार ने जब देशनिकाला दे रखा था तो वे जापान जाकर वहाँ बस गए थे। भारती सहाय इन्हींकी बेटी थीं, जिसका जन्म भी भारत से बाहर कोबे (जापान) में हुआ था।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस १९४३ में जापान पहुँचे। उस समय भारती की उम्र

पद्रह साल थी और वह टोकियो के महिला कालेज शोवे की छात्रा थीं श्री आनंदमोहन पहले से ही सिंगापुर में 'आजाद हिंद फौज' की स्थापना की तैयारी मे लगे थे और अपनी पुत्री के साथ नेताजी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भारती अपने संस्मरण में लिखती हैं—'नेताजी को सामने पा मैं खिल उठी। जिद करने लगी कि मुझे भी अपने साथ ले चलें और 'रानी झाँसी रेजीमेंट' में भरती करा दें। पर नेताजी ने मुसकराकर केवल इतना ही जवाब दिया, 'एक साल बाद।' मैंने समझा, मुझे टाल दिया गया। पर ठीक एक साल बाद मुझे उनका आदेश मिला कि अब मैं 'रानी झाँसी रेजीमेंट' में भरती हो सकती हूँ। मेरी हैरानी और खुशी का ठिकाना न रहा। वास्तव में मेरी उम्र सोलह हो जाने की वे प्रतीक्षा कर रहे थे, यह मुझे बाद में मेरी माँ ने बताया। और मैं कॉलेज छोड़, कॉलेज यूनीफॉर्म उतार, फौज की वरदी पहन फौजी वेश में सज गई।

'माँ मुसकराईं। उन्होंने मेरी टोपी ठीक की, फिर बोलीं, 'हाँ, अब तुम वास्तव में हमारी बेटी लग रही हो। मुझे तुमपर गर्व है।' माँ स्वयं वीरांगना थी। उनके द्वारा मेरे फौज में भरती होने में किसी तरह की बाधा डालने का प्रश्न ही न था। फिर भी जिस दिन मैं कॉलेज छोड़कर आने वाली थी, उन्होंने मेरी परीक्षा ली—'भारती, तुम्हें कॉलेज छोड़ने का दु:ख तो नहीं होगा? अच्छी तरह सोच लो।' मैंने कहा, 'नहीं, माँ, अभी मेरी पढ़ाई पूरी होने में लंबा समय शेष है। तब तक तो भारत आजाद हो जाएगा न! मैं आजाद भारत में फिर से दाखिला ले लूँगी। एक साल ही तो जाएगा!' माँ ने फिर भी अपनी शंका का समाधान कर लेना चाहा—'लेकिन तुमने भारत अभी देखा कहाँ है? क्या तुम उस देश के लिए पूरे मन से लड सकोगी, जहाँ तुम जनमी-पली-बढ़ी ही नहीं?'

'मैं तुनक गई—'कैसी बात कर रही हो, माँ! मैं क्या उस माँ-बाप की बेटी नहीं, जो देश की खातिर ही देश से बाहर हैं! क्या मैं भारत के बारे में कुछ नहीं जानती? क्या मेरा यह सपना नहीं कि मेरा देश आजाद हो और मेरे माँ-बाबूजी फिर अपने देश जा सकें? आप मेरी परीक्षा न लें, माँ, वक्त आने पर दिखा दूँगी कि मै देश के लिए किस तरह लड़ती हूँ! हाँ, आपका आशीर्वाद चाहिए और चाहिए नेताजी का निर्देशन—बस।' '

माँ आश्वस्त हो गईं और भारती सहाय फौज में भरती के लिए तैयार हो गई। फिर भी प्रस्थान करते-करते माँ ने सीख दी—'बस अब नेताजी के हुक्म और भारत माता की बेड़ी काटने के अतिरिक्त और कोई भी विचार मन में न लाना। एक हिदुस्तानी सिपाही के लिए न कोई घर होता है, न माँ-बाप, जाओ।' शायद इन

संस्कारों का ही प्रभाव था कि घर छोड़ते समय भारती उदास नहीं, बल्कि उत्साह और गर्व से भरी थी। उसका सोलह साल का कैशोर्य रक्त शत्रुओं को गोली से उड़ा देने के जोश से खलबला रहा था।

वह लिखती हैं—'उस उम्र में मैं बात-बात पर हँस पड़नेवाली चंचल और अल्हड़ षोडसी नहीं, जैसे एक बंदूक की गोली थी। मैंने सबको आखिरी सैल्यूट किया और पापा के साथ जापान छोड़ दिया। रास्ते में कई बार मौत का सामना करना पड़ा; पर हम बचते हुए बढ़ते हुए। पापा अकसर मेरी ओर चिंतित मुद्रा घुमा देते, फिर मुझे मुसकराते देख हँस पड़ते। मैंने उनसे कहा, 'पापा, शत्रु को मारे बिना मरना एक सिपाही की मौत नहीं होती न!' पापा ने मेरी पीठ ठोंकी।'

बैंकाक में भारती का छह महीने का प्रशिक्षण चला और वह लेफ्टिनेंट बनाकर 'रानी झाँसी रेजीमेंट' में शामिल कर ली गई। भारती की बहुत इच्छा थी फ्रंट पर जाने की; पर नेताजी का आदेश था कि जब तक सभी भाइयों की जान न चली जाए, कोई भी बहन फ्रंट लाइन पर नहीं जाएगी। वैसे उन दिनों सभी स्थान युद्धक्षेत्र ही थे, चाहे शहर हो या जंगल। सिपाही लड़कियों का परेड के बाद एक ही मनोरंजन था, शत्रु के 'मच्छरों' को गिरते देखना और अपने वीरों का रण कौशल देखना। भारती के शब्दों में—'बहुत से भाई शहीद हो गए, पर हमारे जोश व हौसले में कमी नहीं आई। फिर भी इंफाल के मोरचे से वापस लौटना हमारे लिए निराशा का कारण बन गया। अणु बम गिरने के बाद जापानी फौज के आत्मसमर्पण ने जैसे हमारे हाथ-पाँव तोड़कर रख दिए। विवशता में हमें अपने आँसू पी लेने पड़े। इंफाल से लौटते समय बहुत कष्टों का सामना करना पड़ा। कुछ बहनें भी तब शहीद हुईं। पर हमारा गम था कि इंफाल तक एक महिला टुकड़ी जाकर भी बिना लड़े लौटी, उसे लड़ने का अवसर नहीं मिल पाया।'

नेताजी ने हार के बाद लौटते समय आदेश दिया था, सभी बहनों की वर्दी उतरवाकर उनसे संबंधित रिकॉर्ड जला दिए जाएँ और उन्हें सुरक्षित उनके घरों में भेज दिया जाए। फिर भी अनेक बहनें कैद कर ली गईं, जिनमें भारती सहाय भी थीं। उन्हें बैंकाक के उनके कैंप में ही नजरबंद रखा गया। उनके हथियार छीन लिये गए। कागजात तो उनके हाथ नहीं आए, क्योंकि वे पहले ही जला दिए गए थे। भारती लिखती हैं—'कुछ ब्रिटिश अफसर अपनी सहानुभूति दिखाने हम कैदी लड़कियों के कैंप में आते और हमें टिन-फूड आदि ऑफर करते; पर हमने हर बार इनकार कर दिया। फटकारकर साफ कहा, 'हमें आपकी दया की कोई आवश्यकता नहीं, उठाकर ले जाइए यह सब।' वे शर्मिंदा होते। फिर कहते, 'बुरा मत मानिए,